R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2019-21

अक्टूबर 2020

अंक 9

तपोभूमि

मासिक

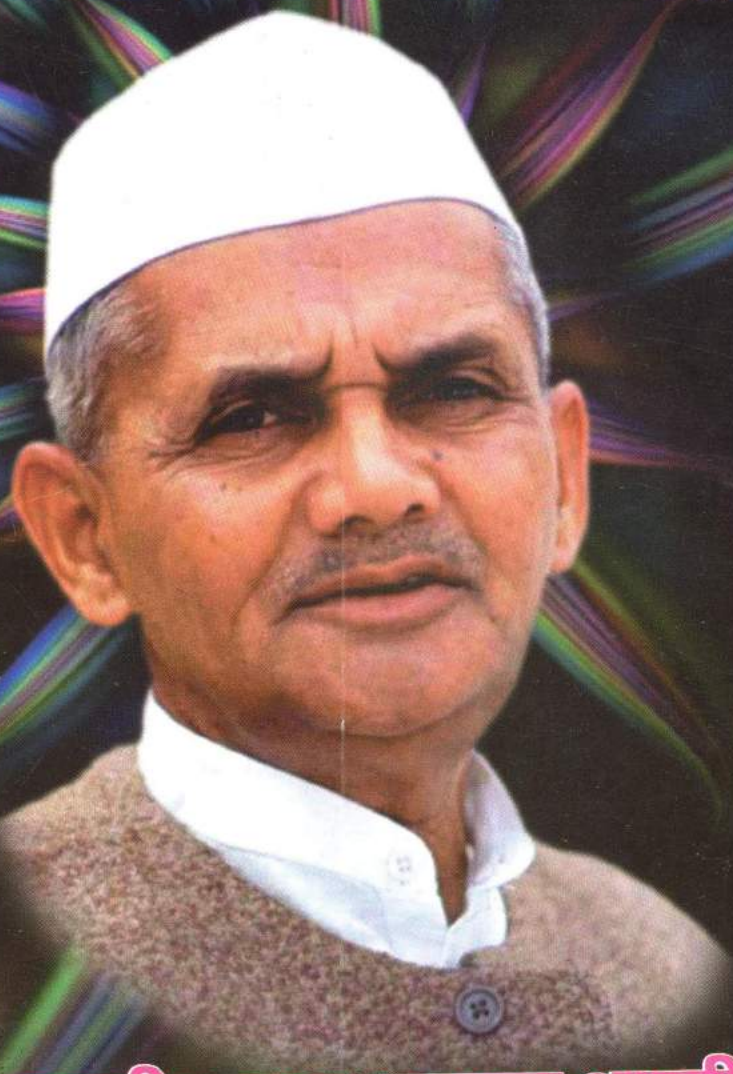

माननीय लाल बहादुर शास्त्री

2 अक्टूबर 1904 - 11 जनवरी 1966

सम्पादकीय

सद्गुणों का संगम थे शास्त्री जी

भारत के पूर्व प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री लोकप्रिय प्रधानमंत्री थे। साधारण निर्धन परिवार में जन्म लेकर प्रधान मन्त्री जैसे पद पर पहुँचना साधारण बात नहीं है पर शास्त्री जी में ऐसे सद्गुणों का संगम मिलता है। जिनके कारण वे अपने जीवन में निरन्तर आगे बढ़ते चले गये। प्रतिभा कभी भी साधनों की मुँहताज नहीं होती है। यह बात शास्त्री जी के जीवन में अक्षरशः घटती है। शास्त्री जी ने जीवन के प्रारम्भ काल से ही दरिद्रता के संकट को झेला था पर इस अभाव ने उनके अन्दर कभी हीन भावना न आने दी और लोभ की भावना भी उनसे सदा दूर रही उनके जीवन की एक प्रेरक घटना हैं कि वे देश को स्वतंत्र कराने के लिये कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता बने उनकी लगन व निष्ठा को देखकर पार्टी में बड़ा प्रभाव पड़ा। मीटिंग में निश्चित हुआ कि शास्त्री जी जैसे कार्यकर्ता धनाभाव के कारण पूरी निष्ठा से सेवा न कर पाये। यह देश के लिये अच्छा न होगा इसलिये शास्त्री जी का व्यय ठीक चलता रहे उन्हें 20 रुपये मासिक मानदेय निश्चित कर दिया गया। शास्त्री जी अपनी पत्नी को मासिक खर्च 20 रुपये देकर देश सेवा में लगे रहते। एक दिन उनके कोई मित्र उनके पास आये और कहने लगे कि मुझे 60 रुपये अत्यन्त आवश्यक हैं आप प्रबन्ध कर दीजिये। शास्त्री जी ने असमर्थता व्यक्त करते हुये कहा कि जो मानदेय मिलता है उससे घर के खर्चे ही चल पाते हैं। मेरे पास अतिरिक्त आय है नहीं। अतः मैं तुम्हारी आर्थिक सहायता करने में असमर्थ हूँ। इस बात को सुनकर शास्त्री जी की पत्नि ने कहा कि मेरे पास रुपये रखे हैं। मैं उनका काम चला दूंगी और उन्होंने उस व्यक्ति को पैसे दे दिये। जब वह व्यक्ति चला गया तब शास्त्री जी ने अपनी धर्मपत्नि से पूछा कि आपके पास रुपये कहां से आये। उन्होंने उत्तर दिया कि आप जो 20 रुपये देते हैं उनमें से 15 रुपये में घर का कार्य चला लेती हूँ 5 रुपये प्रति महीने बचा लेती हूँ यह रुपये उसी बचत में से थे। शास्त्री जी ने यह वृत्तान्त सुनकर कुछ न कहा और अगले दिन कांग्रेस कार्यालय में आवेदन देते हुये कहा कि मेरा खर्च 15 रुपये में ही चल जाता है। अतः अगले महीने से 20 रुपये न देकर 15 रुपये ही दिये जायें। शास्त्री जी की इस निर्लोभता का पता जब पदाधिकारियों को चला तब शास्त्री जी के इस पवित्र व्यक्तित्व के सामने सब नतमस्तक हो गये।

दूसरी घटना शास्त्री जी के देश के प्रति अद्वितीय समर्पण की है कि एक बार चुनाव के समय कार्यकर्ता शास्त्री जी के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पर्क अभियान के लिये गये एक किसान के खेत में मटर की फली लगी हुई थीं। कार्यकर्त्ताओं ने मटर खाने की इच्छा प्रकट की शास्त्री जी ने किसान से कुछ मटर की फली देने की प्रार्थना की। शास्त्री जी जैसे महान देशभक्त को सामने देखकर किसान गद्गद हो गया और उसने फली लगे हुये पौधों को उखाड़कर कार्यकर्त्ताओं को देना प्रारम्भ कर दिया। शास्त्री जी ने देखा कुछ पौधों पर फलियों के साथ फूल भी लगे हुये थे। शास्त्री जी ने किसान से कहा कि पौधे मत उखाड़ो फली तोड़कर दे दो पौधों पर अभी फूल लगे हैं। और फलियां आयेंगी इससे तुम्हारी हानि होगी। किसान ने उत्साह से कहा कि शास्त्री जी आप चिन्ता न करें आपके लिये मैं इतनी हानि सह लूंगा। शास्त्री जी ने बड़े प्यार से किसान को समझाया भैया यह तेरी हानि ही नहीं है अपितु राष्ट्र की हानि है। राष्ट्र में इस प्रकार करने से अन्न कम हो जायेगा। शास्त्री जी की इस राष्ट्रप्रेम की भावना को देखकर किसान आश्चर्यचकित रह गया और अपनी भूल को स्वीकार कर पश्चाताप करने लगा। इस प्रकार शास्त्री जी के जीवन का प्रतिपल उदात्त भावनाओं से आपूरित रहता था।

शास्त्री जी सरल व्यक्तित्व के धनी थे पदप्रतिष्ठा पाकर भी अहंकार की भावना उनके पास नहीं आती थी। उनके जीवन की एक प्रेरक घटना है कि जब वे कारागार मंत्री बने तो कहते हैं कि एक जगह निरीक्षण करने के लिये पहुंचे, ट्रेन के द्वारा उन्होंने यात्रा की वे यात्रा में अकेले गये। रेलवें स्टेशन पर उनके स्वागत के लिये विभागीय

–(शेष पृष्ठ सं. 35 पर)

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–66 संवत्सर 2077 अक्टूबर 2020 अंक 9

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अक्टूबर 2020

सृष्टि संवत्
1960853120

दयानन्दाब्द: 196

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4–5
मानस के अनुसार गृहस्थाश्रम	–रामस्वरूप आर्य	6–9
स्वास्थ्य चर्चा	–	10
नीम का पेड़	–शोभाराम श्रीवास्तव	11–13
पर्यावरण–प्रदूषण	–डॉ0 रामसनेही लाल शर्मा	14
वैदिक शूद्र और पौराणिक शूद्र	–नारायण स्वामी	15–18
साहित्य–सृजन के पांच दशक	–डॉ0 भवानीलाल भारतीय	19–22
गोमेध का सच्चा अर्थ	–पं0 दामोदर सातवलेकर	23–26
प्रभु भक्ति का वैदिक स्वरूप:	–डॉ0 सत्यदेव सिंह	27–30
पारिवारिक जीवन	–	31–33
गीता सुगीता कीजिये	–शान्ति नागर	34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

पुनः हमारे प्राण, आत्मा, इन्द्रियाँ लौट आयें

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥

–अथर्व0 6। 53। 2

शब्दार्थः–

(पुनः प्राणः) पुनः प्राण और (पुनः आत्मा) पुनः आत्मा (नः ऐतु) हमारे अन्दर आये। (पुनः चक्षुः) पुनः आँख और (पुनः असुः) पुनः प्रक्षेपण-शक्ति (नः ऐतु) हमारे अन्दर आये। (अदृब्धः) अपराजित, (तनूपाः) देहरक्षक (वैश्वानरः) वैश्वानर अग्नि (नः विश्वा दुरितानि) हमारे सब मानस और शारीरिक रोगों के (अन्तः) मध्य में (तिष्ठाति) स्थित हो जाये।

भावार्थः–

हम नैतिक पतन के गर्त में गिर चुके थे और हमारा शारीरिक स्वास्थ्य भी पतित हो चुका था। हमारा प्राण, हमारा आत्मा, हमारे चक्षु, हमारे श्रोत्र, हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ आध्यात्मिक दृष्टि से भी और भौतिक दृष्टि से भी मरणासन्न हो चुके थे। हमें प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र आदि साधन मिले हैं आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए और साथ ही शरीर को बलवान् बनाकर तथा शरीर से सदा स्वस्थ रहकर सामाजिक उन्नति करने के लिए भी।

हमारा प्राण कितना बलवान है। जैसे रथ को घोड़ा खींचता है, ऐसे ही हमारे शरीर को प्राण खींच रहा है। चक्षु, श्रोत्र, हाथ, पैर आदि में भी प्राण ही क्रियाशक्ति भर रहा है। यदि प्राण शरीर से निकलने लगे तो शरीरस्थ सब इन्द्रियाँ भी उसके साथ ही खिंचती चली जायेंगी। प्राण ने ही इन्हें शरीर में बाँध रखा है। परन्तु चक्षु श्रोत्र आदि तथा हाथ-पैर आदि की शक्तियाँ भी कम नहीं हैं। आँख की पुतली में कैसी लीला इसके निर्माता ने भरी है कि सिनेमा की फिल्म के समान इसमें सारा दृश्य अंकित हो जाता है। कानों की भी कैसी अद्भुत रचना है कि चारों दिशाओं से आनेवाले शब्द यन्त्रवत् इसमें श्रुतिगोचर हो जाते हैं।

मन्त्र कह रहा है कि हमारा प्राण यदि प्रसुप्त हो गया है, शक्तिहीन हो गया है, तो पुनः वह जाग

जाये और सशक्त हो जाये। हमारे शरीर-रथ का रथी आत्मा यदि उदासीन हो गया है, मृततुल्य हो गया है, तो पुनः वह सक्रिय और जीवित हो जाये। हमारे चक्षु, श्रोत्र आदि यदि रोगग्रस्त और अशक्त हो गये हैं, तो पुनः वे स्वस्थ और शतगुणित शक्तिवाले हो जायें। मन्त्र में 'पुनः हमें असु प्राप्त हो' यह भी कहा गया है। 'असु' का प्रचलित अर्थ प्राण है, किन्तु प्राण का नाम पहले आ चुका है। यहाँ 'असु' का अर्थ है प्रक्षेपणशक्ति। रोग, मल, दोष आदि शरीर की प्रक्षेपण-शक्ति से बाहर फेंके जाते हैं। उसके दुर्बल हो जाने से शारीरिक मल या दोष शरीर में ही जमा होते रहते हैं, जो कालान्तर में किसी भयानक रोग को उत्पन्न करने में कारण बनते हैं। अतः मन्त्र कहता है कि प्रक्षेपण-शक्ति भी मुझे पुनः प्राप्त हो जाये। यहाँ 'असु' शब्द प्रक्षेपणार्थक अस् धातु से बना है।

मन्त्र का उत्तरार्द्ध कहता है कि हमारे अन्दर जो मानसिक और शारीरिक दुरित आ बैठे हैं, उन सब दुरितों के अन्दर वैश्वानर अग्नि आकर स्थित हो जाये। वैश्वानर अग्नि है सब नरों का हितकर्ता अग्नितत्त्व,उसके आने से सब दुरित नष्ट हो जायेंगे। वह अग्नितत्त्व 'अदब्ध' अर्थात् अपराजित है, उसे दुरित पराजित नहीं कर सकते। वह 'तनूपाः' अर्थात् शरीरों का रक्षक भी है। वह हमारे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष की सुरक्षा करनेवाला है। अग्नितत्त्व के शरीर में न्यून हो जाने से शरीर के सब अंगों की तथा सब इन्द्रियों की क्रियाशीलता मन्द पड़ जाती है। अतः आओ, वैश्वानर अग्नि को हम अपने अन्दर पुनः सजग करें, जिससे हमारे सब अंग पूर्ववत् शक्तिशाली हो जायें और हम यशस्वी हों। ❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2018 और 2019 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है। वे वर्ष **2020** के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। शुल्क जमा न होने की स्थिति में पत्रिका बन्द कर दी जायेगी। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। वे पाठकगण धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समय से वर्ष 2020 का शुल्क जमा किया है। **—व्यवस्थापक**

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

मानस के अनुसार गृहस्थाश्रम

लेखकः रामस्वरूप आर्य, एटा (उ. प्र.)

गोस्वामी जी महाराज की जीवनी से प्रतीत होता है कि उन्हें जन्म देने के बाद ही उनकी पूज्या माता जी हुलसी का देहावसान हो गया था। इस कारण गोस्वामी जी महाराज का बाल्यकाल तथा विद्या अभ्यास का समय अत्यन्त झंझावत्तों में व्यतीत हुआ। विद्या की नगरी काशी में जब वह विद्याध्ययन कर रहे थे उस समय वहाँ के तथाकथित ब्राह्मणों ने उन की घोर उपेक्षा की। पुनरपि गोस्वामी जी महाराज ने साहस नहीं छोड़ा; और अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल रहे। उन्होंने अपने काव्य में जहाँ अनेक प्रसंगों का वर्णन किया है, वहीं पर गृहस्थाश्रम जो श्रेष्ठ और ज्येष्ठ आश्रम है उसका बड़े ही मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है। यद्यपि वे गृहस्थाश्रम का पूर्ण उपभोग नहीं कर पाये थे। गृहस्थाश्रम के मूलाधार पति और पत्नी हैं। अन्य पारिवारिजन इन्हीं के अन्तर्गत आते हैं। जितना-जितना पति और पत्नी में प्यार होगा उतना-2 ही गृहस्थाश्रम सुखी और समृद्धिशाली होगा। महर्षि मनु कहते हैं-

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
तस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। - (मनु0)

जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे कुलों में सदैव कल्याण निवास करता है। उस गृहस्थ के माता और पिता तथा पुत्रियाँ सदैव आनन्द से भरे रहते हैं। सच में परिवार की प्रसन्नता नारी पर ही निर्भर है। इसी कारण वेद भगवान् उपदेश देते हैं कि हम परिवार में कभी किसी से द्वेष न करें तथा एक दूसरे को ऐसा प्यार करें जैसे गाय अपने नवजात बछड़े को प्यार करती है। पढ़ें वेद की ऋचा-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।। -(अथर्व0 3/30)

ये है वेद का पावन सन्देश। जब आर्य पुरोहित पाणिग्रहण संस्कार कराते हैं उस समय प्रतिज्ञा के जिन मन्त्रों को महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने ग्रन्थ संस्कारविधि में उद्धृत किया है; उनको पढ़कर वर तथा कन्या से प्रतिज्ञा कराते हैं कि आज से तुम दोनों गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर रहे हो, इसलिये तुम्हें जो वेद मंत्र उपदेश दे रहे हैं इन उपदेशों को यदि जीवन में धारण करते रहे तो तुम्हारा दाम्पत्य जीवन सुखी एवं समृद्धिशाली बनेगा।

ओ3म् समंजन्तु विश्वेदेवा समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ।। -(अथर्ववेद)

वर और कन्या दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि जगत्पिता परमात्मा ने हम दोनों को गृहस्थ जीवन का सुख भोग ने के लिये संयुक्त किया है। आज से हम दोनों का मन-वचन कर्म एक हो गया है। जैसे दो स्थानों के पानी के मिल जाने पर संसार का कोई भी वैज्ञानिक अलग नहीं कर सकता इसी प्रकार हम दोनों को भी कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती। यह है यज्ञ वेदी पर की गई प्रतिज्ञा जिसका पालन करके पति-पत्नी जीवन पर्यन्त आनन्द का उपभोग करते हैं। इस प्रतिज्ञा के मंत्र को बोलकर यज्ञ की परिक्रमा करने से पूर्व आचार्य वर को खड़ा करके तथा बैठी हुई कन्या का हाथ ग्रहण करा करके पुनः प्रतिज्ञा के मंत्रों को वर-कन्या से बुलवाते हैं।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।

वर कहता है मैं तुम्हारे सुख सौभाग्य की वृद्धि के लिये तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ। तुम मुझ पति के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त आनन्दपूर्वक रहो।

मान्यवर ! महाभारत काल के बाद अनेकों महापुरुष इस भारतभूमि पर अवतरित हुए हैं। जिन्होंने देश-विदेशों में भारतीय संस्कृति के गौरव को चमकाया, तथा आर्यों को अपनी मूल परम्पराओं की रक्षा के लिये सजग किया। माँ भारती उनकी सदा ऋणी रहेगी। उन सभी माननीय सन्तों तथा आचार्यों की लिखित पुस्तकों को पढ़ेंगे तो आप को विदित होगा कि संस्कारों के द्वारा ही मानव जीवन उत्कृष्ट बनता है, भारत के मनीषियों ने पर्वतों की गुफाओं और कन्दराओं में तथा अरण्यों में अपने आश्रमों में बैठकर वेदादि सत् शास्त्रों का गहन अध्ययन करके हमारे कल्याणार्थ जो व्यवस्थायें दी हैं वह सदैव अनुकरणीय रहेंगी।

योगिराज महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन-चरित्र का तथा उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों को पढ़ने का जिन भाई बहनों को सौभाग्य मिला होगा वह भली-भांति जानते होंगे कि मानव की चतुर्मुखी उन्नति का कितना सुन्दर वर्णन है, साथ ही अपने ग्रन्थ संस्कारविधि में गृहस्थ प्रकरण को उद्धृत करते हैं तो वेदादि सत् शास्त्रों के अनेकों उद्धरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

1. **यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।**
   तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।।
2. **यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन, चान्वहम्।**
   गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।।
3. **प्रजनार्थं महाभागाः पूजा हि गृहदीप्तयः।**
   स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।
4. **यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।**
   तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

1. जिस प्रकार वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह होता है।

2. क्योंकि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियों को अन्न–वस्त्रादि दान से नित्यप्रति गृहस्थ धारण–पोषण करता है, इसलिये व्यवहार में गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से बड़ा है।

3. हे पुरुषो! सन्तानोत्पत्ति के लिये महाभाग्योदय करने वाली, पूजा के योग्य गृहस्थाश्रम को प्रकाश करती घरों में स्त्रियाँ हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मीस्वरूपा होती है। क्योंकि लक्ष्मी शोभा, धन और स्त्रियों में कुछ भी भेद नहीं है।

4. हे मनुष्यो ! जैसे सब बड़े–बड़े नद और नदी सागर में जाकर स्थिर होते हैं वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ ही को प्राप्त होके स्थिर होते हैं।

आर्यजनों आज हमारे परिवार टूट रहे हैं यदि हम भारतवासी किंचित् भी इन ऋषि–वाक्यों पर विचार करके अपने घरों में स्वाध्याय तथा सत्संगों का आयोजन करके अपने परिवारों जनों को इन उदात्त विचारों से लाभान्वित कराते रहे तो हम निश्चय ही अपने परिवारों को सद् विचारों वाला बना सकते हैं। थोड़े दिनों पूर्व की ही बात है जब घर में दादा–दादी तथा माता–पिता घर में आने वाले सगे सम्बन्धी शिक्षाप्रद कथा कहानियाँ सुना कर जहाँ हमारा मनोरंजन करते थे वहीं हमारे बालक–बालिकाओं में अपने अतीत एवं धार्मिकता और सदाचार का बीज वपन करते थे आज ये परम्परायें परिवारों में से प्रायः समाप्त सी हो गई हैं। बड़े–बड़े नगरों का तो कहना ही क्या ग्रामों में भी मनोरंजन के नये–नये वैज्ञानिक साधनों की बाढ़ आ रही है। अब न कोई उन किस्से कहानियों को सुनना पसन्द करता है, न कोई सुनाता ही है। इस सम्बन्ध में हमारा अन्तिम पड़ाव कहाँ होगा? प्रभु जाने। परन्तु हम तो आशावादी और प्रभु विश्वासी व्यक्ति हैं। जगद्गुरू भारत इन झंझावतों से निकल कर किसी न किसी दिन पुरातन वैदिक युग का दर्शन करेगा। डॉ0 सर इकबाल के शब्दों में–

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी ये आशियाँ हमारा।।
यूनान मिश्र रोमाँ सब मिट गये जहाँ से।
बाकी फकत रहा है नामों निशान हमारा।।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि सारा ज्ञान–विज्ञान भारत भूमि से ही मिश्र यूनान तथा रोम के देशों से होता हुआ विश्व के देशों में गया है। डॉ0 सर इकबाल की यह युक्ति सर्वांश में सत्य है कि हमारी हस्ती क्यों नहीं मिटती? यही हमारी सांस्कृतिक धरोहर जिसकी जड़ें भारतीयों के मन मस्तिष्क पर परम्परागत जमी हुई है। हमारा ईश्वर विश्वास तथा वर्ण व्यवस्था, तथा आश्रम व्यवस्था एवं दैनिक जीवन चर्या आज भी संसार के लिए अनुकरणीय है। पढ़िये आगे कुछ वेद की ऋचायें और अवलोकन करिये गृहस्थ जीवन में नारी के सम्मान को;

ओ३म् साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु।।
अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।

हमारे घरों में दूसरों की बेटियाँ जो वधू बनकर आती हैं उनका कितना बड़ा अधिकार है इसका वर्णन वेद भगवान करते हैं। हे वधूतू अपने श्वसुर एवं सार गृह में पक्षपात छोड़कर प्रवृत्त रहना क्योंकि तू अपने सास-श्वसुर गृह में साम्राज्ञी अर्थात् रानी बनकर आयी है। प्रेमयुक्त होकर उनकी आज्ञा का पालन करना और जो मेरी बहिन जो तेरी ननद है उनमें भी प्रीत युक्त रहना और जो मेरे भाई जो तेरे देवर हैं और ज्येष्ठ हैं उनमें भी प्रीती से अधिकार पूर्वक अविरोध पूर्वक रहना।

2. और भी हमारे गृहस्थों का कैसा व्यवहार हो इसका वेद भगवान वर्णन करते हैं जो गृहस्थाश्रमी अपने माता-पिता, गुरू आचार्य धार्मिक जनों के आज्ञाकारी रहते हैं। जहाँ पत्नियाँ अपने पति से मीठा व्यवहार करती है वहाँ हर प्रकार से शान्ति निवास करती है।

3. हे गृहस्थो! जैसे तुम्हारा पुत्र प्रीति युक्त मन वाला अनुकूल आचरण और जैसे पिता के साथ प्रेम वाला रहता है वैसे तुम लोग भी सदैव अपने पुत्रों के साथ वर्ताव करना। जैसे पत्नी पति की प्रसन्नता के लिये माधुर्य गुणयुक्त वाणी को कहे वैसे पति भी शान्त होकर अपनी पत्नी से मधुर वाणी का प्रयोग करें। धर्म शास्त्र ने मधुर वाणी को नारी का अनुपम आभूषण बताया है। हमारी ज्ञानेन्द्रियों अथवा कर्मेन्द्रियों के द्वारा जितना व्यवहार होता है उसको हम अपनी वाणी से ही तो व्यक्त करते हैं। इसलिये हमारी वाणी में माधुर्य होना अत्यन्त अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में धर्मशास्त्र का मानव मात्र को सन्देश है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नाऽनृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः।। -(मनु)

सत्य बोले, किन्तु सत्य भी प्रिय बोले। अप्रिय सत्य कभी न बोले। प्रिय भी असत्य न बोले, यही सनातन धर्म है। विस्तार भय से इस पर अधिक लिखना नहीं चाहता पाठक महानुभावों ने इतने ही से बहुत कुछ अनुभव किया होगा। अब इस आश्रम की महानता को गोस्वामी जी महाराज के लिखे हुये कुछ सुन्दर प्रसंगों में पढ़ें। पति-पत्नी के प्यार की पराकाष्ठा। माता कैकेई के द्वारा महाराज दशरथ को दिया चौदह वर्षों का वनादेश श्री राम जी को ज्ञात हो चुका है। प्रातःकाल की पवित्र बेला है। श्री रामचन्द्र जी पूज्य पिताजी को समझा कर माता कौशल्या के भवन में प्रवेश करते हैं, उस समय कौशल्या जी रेशमी वस्त्र धारण किये हुये यज्ञ कर रही थीं। सर्वंवैपूर्णं स्वाहा के साथ यज्ञ-प्रार्थना तथा शान्तिपाठ करके माता कौशल्या ने देखा बेटा राम खड़े हैं। वात्सल्यवश माता ने पूछा बेटा राम राज्यतिलक का समय गुरू वशिष्ठ तथा आचार्यों ने कब का निर्धारित किया है? श्रीराम कुछ क्षण मौन रह कर कहते हैं-

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

वातनाशक तेल–

मिट्टी का तेल 40 ग्राम, कपूर पिसा हुआ 10 ग्राम, दोनों को शीशी में डालकर मजबूत कार्क लगा दें और आधा घण्टा धूप में रख दें। फिर दोनों को हिला लें। बस, दवा तैयार है, जहाँ दर्द हो वहाँ धीरे-धीरे खूब मालिश कीजिए, तत्पश्चात् सिकाई कर दें, दर्द ठीक हो जाएगा। यह तेल वात-रोगियों के लिए अमृत के समान लाभदायक है।

वायुगोला–

1. अरण्डी का तेल (Castrol Oil) 6 ग्राम, दही 6 ग्राम, दोनों को मिलाकर रोगी को पिला दें। आधा घण्टा पश्चात् एक मात्रा और दे दें। सेवन कराते ही चमत्कार प्रतीत होगा। फिर कभी जीवन-भर वायुगोले का दर्द नहीं होगा।

2. ढाक के पत्तों की घुण्डी 20 नग तोड़ लें और इन्हें ताजा पानी में पीसकर रोगी को पिलाकर उसे चित्त लिटा दें। आधा घण्टे में दर्द ठीक हो जाएगा। यदि कुछ कसर रहे तो एक बार पुनः पिला दें। आयु-भर इस रोग का दौरा नहीं पड़ेगा।

3. गाय का दूध 250 ग्राम, पानी 250 ग्राम, लालमिर्च साबुत बीजोंसहित 5 नग। मिर्चों को पानी-मिले दूध में डालकर अग्नि में पकाएँ। जब पानी जल जाए और दूध मात्र रह जाए तब अग्नि से उतारकर मिर्चों को हल्के हाथ से निचोड़कर छान लें। इसमें थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर गर्म-गर्म पिलाएँ। भयंकर वायुगोला पर प्रभावकारी योग है।

4. सत्यानाशी (स्वर्णक्षीरी, जिस पर पीले फूल आते हैं) की जड़ का बक्कल 10 ग्राम, कालीमिर्च 5 नग। दोनों को 30 ग्राम जल में पीसकर पिला दें। पेट दर्द चाहे कितना ही भयंकर हो, पीते ही शान्त हो जाता है। कै या दस्त के द्वारा आँव निकलकर पेट साफ हो जाता है।

5. नीबू का रस 6 ग्राम की मात्रा में पिलाने से उदर-शूल और वायुगोला नष्ट होता है।

6. काला नमक और जवायन समभाग का चूर्ण 3-3 ग्राम फांककर मठा पीने से वायुगोला दूर होता है।

7. पके केले के भीतर पपीते का 4 बूँद दूध भरकर खाने से वायुगोला मिटता है।

वायुनाशक–

1. चीते की जड़, इन्द्रजौ, पाढ की जड़, कुटकी, अतीस और हरड़, सबको समभाग लेकर कूट-पीस कपड़छन कर शीशी में भर लें। प्रतिदिन 4-4 ग्राम चूर्ण गर्म पानी के साथ दें। इसके सेवन से

शेष पृष्ठ संख्या 13 पर

नीम का पेड़

लेखकः शोभाराम श्रीवास्तव, भोपाल (म. प्र.)

पड़ौसी के आंगन में लगे नीम के पेड़ की कुछ टहनियां मंजुला के आंगन में भी झुक आईं थीं। उनमें नयी-नयी कोपलें फूट रही थीं।

दोपहर के बारह बज चुके थे। रमेश दफ्तर चला गया था और उसकी ननद सुशीला भी कॉलेज जा चुकी थी। वह रसोई से निपट कर अपने तीन वर्षीय पप्पू को गोद में लिये जाड़े की धूप में आंगन में खड़ी थी।

इस नये घर में आये उसे अभी केवल दो सप्ताह ही हुए थे किन्तु अनजाने ही उसकी चेतना पर आंगन में झुकी नीम की टहनियां छा गई थी, वह जब भी अवकाश में होती, अपलक इन टहनियों को निहारती रहती। टहनियों में फूटती नयी कोपलें उसे अजीब-सी प्रेरणा देती रहती थीं। कभी-कभी तो पत्ते गिनने की चेष्टा का ध्यान आता, तो अपने पागलपन पर मुस्करा उठती थी।

रमेश ने भी अचानक मिली इस सुविधा का उपयोग करना शुरु कर दिया था। उसने अपने ब्रुश-पेस्ट एक तरफ रख दिये और टहनियों में से तोड़कर प्रतिदिन ताजी नीम की दातुन करने लगा।

मंजुला को लगता कि इन वृक्षों का भी कैसा जीवन है। जहां भी, जिस सीमा तक प्रवेश करते हैं, दूसरों के उपयोग में आने लगते हैं। कहीं कोई भेदभाव नहीं, पड़ोसी के आंगन से खाद पानी लेते हैं और इस आंगन में झुकने पर पूरा टैक्स अदा करते हैं।

एकाएक उसे याद आया कि जब वह पहली बार इस घर में आई थी तो वर्षों से इस मुहल्ले में रहने वाली उसकी एक पूर्व परिचिता ने बताया था-''बहन, तुम्हें घर तो बहुत अच्छा मिला है। सब प्रकार की सुविधाएं हैं। किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी। लेकिन जरा पड़ोस वालों से नपा-तुला सम्बन्ध रखना। बड़े स्वार्थी लोग हैं, समय पड़ने पर एक कटोरा आटा भी नहीं मिलेगा।

''पड़ोसी होंगे स्वार्थी'' मंजुला ने अपने आप से कहा। हमारा तो अब नीम ही पड़ोसी है। लोग बेकार ही इसे कड़वी कहते हैं, यहां तो आते ही इसने अपना स्नेह लुटाना शुरु कर दिया है।

वह ममता भरी निगाहों से उन झुकी हुई टहनियों को देखने लगी। कहीं से उड़ता-उड़ता एक कौआ आकर टहनी पर बैठ गया था। पप्पू जो कि अपनी मां की देखा-देखी टहनियों को निहार रहा था कौए को देखकर बोला-'मम्मी वो......वो.....।'

'हाँ बेटा, वो कौआ.....' मंजुला ने कहा। कौआ डाल पर बैठा हुआ अपनी गर्दन यहाँ-वहाँ घुमा रहा था। उसे देखकर पप्पू अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों से ताली बजा कर प्रसन्नता व्यक्त कर रहा था।

टहनी पर बैठे कौए को देखकर आकाश में उड़ रहे और भी तीन-चार कौए डाल पर उतर गए।

पप्पू कौओं के इस झुण्ड को देखकर बड़ा खुश हुआ। पेड़ कौओं का मनोरंजन कक्ष बन गया।

कौओं का फुदक–फुदक कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बैठना, केवल पप्पू को ही नहीं, मंजुला को भी भा रहा था। मंजुला ने अनुभव किया कि डाल पर बैठे कौए निरीक्षण की निगाह से आंगन में चारों तरफ देख रहे हैं। पक्षियों का आशय समझते उसे देर न लगी।

वह रसोई घर में गई और कुछ रोटियां ले आई। उसने रोटियों के टुकड़े–टुकड़े करके आंगन में एक स्थान पर रख दिए और पप्पू को लेकर बरामदे में चली आई ताकि पक्षियों को नीचे उतरने में संकोच न हो। कुछ देर तक कौए डाली पर ही बैठे–बैठे लालच भरी निगाहों से रोटियों के टुकड़ों को देखते रहे फिर जैसे ही आश्वस्त हुए कि कहीं कोई खतरा नहीं है, फुर्र से उड़कर रोटियों पर टूट पड़े और टुकड़ों को मुंह में दबाए डाल पर जा बैठे।

भोजन के आनन्द से कौए झूम उठे और भोजन के साथ–साथ आपस में लड़–झगड़ कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने लगे।

पप्पू को पक्षियों का यह खेल बड़ा रुचिकर लग रहा था। वह चकित मुद्रा में उन्हें गौर से देखता जाता था और बीच–बीच में मम्मी वो...... वो...... ' कहकर मंजुला का ध्यान आकर्षित करता जाता था।

'महारानी जी, पक्षियों से इतना ही प्रेम था तो कहीं जंगल में बंगला क्यों नहीं बनवा लिया? पड़ोसिन की कर्कश आवाज गूंजी। वह बड़बड़ा रही थी। 'न जाने किसका जूठा–मीठा रोटी का टुकड़ा कौओं ने पीने के पानी में डाल दिया। मेरी तो पूरी घिनौची ही खराब हो गई।'

मंजुला की तन्द्रा टूटी। पप्पू को लगा कि उसके खेल में विघ्न हो गया है। मंजुला सोच ही नहीं पा रही थी कि अब क्या उत्तर दे।

मंजुला को लगा कि उसने बहुत बड़ा अपराध कर दिया है। उसे क्या अधिकार था कि वह अपनी खुशी के लिए किसी दूसरे को तकलीफ दें? फिर वह सोचने लगी इसमें मेरा क्या दोष है? फिर पक्षी आखिर पक्षी है। हमें खुद ही अपनी चीजों की सुरक्षा रखनी चाहिए। मेरे घर के बजाय अगर सड़क पर पड़ी कोई चीज कौए चोंच में दबाकर लाते और वह इनके पानी में गिर जाती, तो क्या ये नगरपालिका वालों से लड़ने जातीं?

'अच्छा, अब बोलती भी नहीं।' पड़ोसिन बोले जा रही थी..... ' न बोलो, शाम को उन्हें आने दो। ससुरी नीम को ही नहीं कटवा दिया तो मेरा नाम भी राजेश्वरी नहीं। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी, फिर देखती हूं अपने लाडले कौओं को कहां बिठाती है।'

मंजुला पप्पू को लेकर बैठक में आ गई। उसे चिन्ता खाए जा रही थी कि शाम को रमेश जब सुनेगा, तो न जाने वह क्या कहेगा। उसे सहज भाव से किए हुए अपने उस काम पर ग्लानि होने लगी।

विचारों में डूबे–डूबे उसे पता ही नहीं चला, कि कब चार बज गए।

भाभी, पड़ोसिन से किसी बात पर झगड़ा हो गया? सामने ननद सुशीला खड़ी थी।

मैं कालेज से लौट रही थी, तो पड़ोसिन ने ही सब कहानी सुनाई।

अब तुम्हीं बताओ, कौओं की आदतों पर मेरा क्या बस है। ज्यादा हुआ मैं उनके बर्तन मलकर फिर से पानी भर दूंगी।

अब तक रमेश भी आ गया था। उसे भी पड़ोसी गजानन बाबू ने सब सुना दिया था।

पड़ोस से खटपट की आवाज आने लगी। कुछ मजदूर नीम को रस्सियों से बांध रहे थे ताकि काट कर नियत स्थान पर गिराया जा सके। मंजुला को लगा कि किसी बेकसूर की मुश्कें बांधी जा रही हैं।

मंजुला ने तय किया कि वह एक निर्दोष को अत्याचार से बचाएगी। आखिर नीम के पेड़ का दोष ही क्या है। वह किसी से लेता ही क्या है–हमेशा देता ही तो है। शीतल छाया, स्वच्छ हवा, दवाई के समान पत्तियाँ, किसी भी अच्छे टूथ पेस्ट से अधिक गुणकारी दातौने और कई प्रकार की दवाइयों के काम में आने वाला निबौरियों (नीम के फल) का तेल, पक्षियों को आसरा, मुसाफिरों को छाया।

तब तक उसे मजदूरों के कुल्हाड़ी चलाने की आवाज आने लगी। मंजुला कमरे से तेजी से बाहर निकलते ही मजदूरों के पास आकर बोली–'रुको भैया, रुको......क्यों काट रहे हो इस बेचारे नीम के पेड़ को।'

मजदूरों के हाथ रुक गए। उन्होंने कुल्हाड़ियां नीचे रख दीं। मंजुला कहती गई 'भैया तुम आज इस नीम को काटोगे तो कल वह सूख कर लकड़ी बन जाएगी और कहीं किसी चूल्हे में जलकर राख हो जाएगी और अगर इसे नहीं काटोगे तो यह सालों साल खड़ी रहेगी। सब को शीतल छाया देगी, मुहल्ले भर की हवा को साफ रखेगी। दातुन के शौकीनों को दातुनें देगी। पक्षियों को आश्रय देगी। क्या तुम चाहते हो कि यह सब तुम्हारी कुल्हाड़ी के एक बार से तहस नहस हो जाए।

मजदूरों की समझ में बात आ गई। उन्होंने अपनी कुल्हाड़ियां उठाई और चलने लगे।'

मंजुला की बातों से राजेश्वरी का चेहरा भी गम्भीर हो गया। उसे महसूस हुआ कि उसने नीम के पेड़ को कटवाने का गलत फैसला लिया था। आखिर नीम के पेड़ से उसे भी तो छाया और शुद्ध हवा मिलती है।

तभी पप्पू फिर मंजुला का आंचल पकड़ कर उसे नीम के पेड़ पर बैठे कौओं की ओर इशारा करके बताने लगा मम्मी–मम्मी वो...... वो......कौआ। ❁

पृष्ठ संख्या 10 का शेष–

समस्त वात–रोग निश्चय ही नष्ट होते हैं। यह अमोघ ओषधि है परन्तु कम–से–कम एक मास तक सेवन करें।

2. तारपीन का तेल 30 ग्राम, अरण्डी का तेल 30 ग्राम, सेंधा नमक बारीक पिसा हुआ 10 ग्राम, कपूर 6 ग्राम, पिपरमेंट का तेल 20 बूँद। सबको एक शीशी में मिलाकर सुरक्षित रखें। शीशी को खूब हिलाकर पीड़ा के स्थान पर दिन में दो–तीन बार मलें। इससे भयंकर वायु–पीड़ा भी शीघ्र दूर होती है।

वायुशूल–

अरण्डी का तेल 20 ग्राम, अदरक का रस 20 ग्राम, दोनों को मिलाकर रोगी को पिला दें। ऊपर से 2–4 घूँट गर्म पानी पिला दें। तुरन्त आराम होगा।

–(शेष अगले अंक में)

पर्यावरण-प्रदूषण

रचयिताः डॉ० रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', फरीदाबाद (हरि०)

कटे आम, अमरूद सब, सूख गये अंजीर।
नदियों में बहने लगा, अब तेजाबी नीर॥
पीपल, बरगद, नीम की, काट किया पामाल।
गमले में रख कैक्टस, रुचि से रहे संभाल॥
तेजाबी मख में किया, तूने हमें हविष्य।
मछली बोली रे मनुज, तेरा यही भविष्य॥
पर्वत नंगे कर दिये, उपवन दिये उजाड़।
मधुवन, निर्विदन में खड़े, सिर्फ झाड़ झंखाड़॥
धुआं उगलती चिमनियां, कान फोड़ता शोर।
आम कटे अब किस जगह, बैठें नाचें मोर ?॥
सूखे वंशीवट कदम्ब, उजड़े-उजड़े फूल।
यमुना में उड़ने लगी, अब तो सूखी धूल॥
गंदा गंगा को किया, यमुना को बदरंग।
हालत सरयू की लखी, राम रह गये दंग॥
सर, सरिता, सागर, कुएं, जल से होंगे हीन।
मानव यदि करता रहा, यों ही तेरह तीन॥
कटे विपिन सर्वत्र अब, बिखरे टूटे कांच।
कस्तूरी मृग अब कहां, जाकर भरै कुलांच॥
मानवता में मिल गये, दानवता के तत्व।
हुई प्रदूषित सभ्यता, खतरे में अस्तित्व॥
आंखें कडुआने लगीं, बहरे होते कान।
अब संकट में पड़ गए, इस धरती के प्रान॥

❋❋❋

वैदिक शूद्र और पौराणिक शूद्र

लेखकः नारायण स्वामी

शतपथ ब्राह्मण में, पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण के सिवा, एक चौथे मनुष्यऋण की बात कही गई है। शतपथकार का अभिप्राय इस ऋण से यह है कि प्रत्येक मनुष्य अपने भोजन वस्त्र आदि कार्यों के लिये अन्यों की सहायता का मुहताज है। अन्य व्यक्तियों की सहायता ही से उसकी जरूरतें पूरी हुआ करती हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अन्यों का ऋणी है और यह ऋण उसे अन्य ऋणों की भांति चुकाना चाहिये। उस ऋण का चुकाने ही की गरज से आश्रम बनाये गये हैं। आश्रमों के उद्देश्यों से यह बात भली भांति प्रकट होती है। आश्रम के उद्देश्यों पर इसलिये एक निगाह डालनी चाहिये; आश्रम चार हैं और उनके उद्देश्य इस प्रकार है–

(क) ब्रह्मचर्याश्रम– इस आश्रम में रहकर मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति करते हुये, अपने को अच्छा गृहस्थाश्रमी बनने का यत्न करता है, और गृहस्थ आश्रम वाले उसका पोषण करते हैं, वानप्रस्थ उसको शिक्षा तथा संन्यासी उसे उपदेश देते रहते हैं।

(ख) गृहस्थाश्रम– इस आश्रम वाले अपने सिवा तीनों आश्रम वालों का पोषण करते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम गृहस्थ का काम सुचारु रीति से चलाने के लिए गृहस्थाश्रम को तैयार करके अच्छे व्यक्ति दिया करता है। वानप्रस्थ उसकी संतान को मुफ्त शिक्षा देता है और संन्यासी उपदेश द्वारा उसकी रक्षा करता है।

(ग) वानप्रस्थ– इस आश्रम वाला सभी को शिक्षा और दीक्षा देते हुये अपने को संन्यास ग्रहण के योग्य बनाता है।

(घ) संन्यासाश्रम– इस आश्रम वाले, आत्मिक उन्नति करते हुए बाकी सभी आश्रम वालों को, अपने–अपने आश्रमों का काम तत्परता के साथ करने के लिये तैयार करते रहते हैं।

आश्रम के इन उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने ही से स्पष्ट हो जाता है कि ये चारों आश्रम एक दूसरे की सहायता ही के उद्देश्य से निर्मित हुये हैं।

(2) गृहस्थाश्रम वालों के जिम्मे, समस्त आश्रम वालों का पालन और पोषण है, इसके लिये उन्हें धन की जरूरत होती है। इस धन की जरूरत को पूरा करने के लिये वर्णों का निर्माण किया गया है। वर्ण भी चार हैं। उनके कर्तव्यों पर विचार करने से प्रकट हो जायगा कि वे, धन की जरूरत पूरा करने के लिये धन कमाने के व्यवसाय मात्र है। उनके कर्तव्य इस प्रकार हैं–

वर्ण	लोक सम्बन्धी काम	परलोक सम्बन्धी काम
(1) ब्राह्मण–	अध्यापन, यज्ञ कराना, दान लेना	अध्ययन, यज्ञ करना दान देना
(2) क्षत्रिय–	शासन और फौजी विभाग की सेवा	"
(3) वैश्य–	कृषि, व्यापार, पशु पालन तथा अन्य कला–कौशल	"
(4) शूद्र–	प्रत्येक व्यवसाय का श्रम–सम्बन्धी कार्य	"

इन कर्तव्यों पर विचार करने से प्रकट हो जाता है कि परलोक को अच्छा बनाने के काम मनुष्यमात्र के एक ही हैं उनमें कोई भेद नहीं। लोक में जीविका उपलब्ध करने के पेशे, इन चार श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं जिन्हें वर्ण कहते हैं। जितने भी पेशे विद्या से सम्बन्धित हैं, जैसे– वैद्यक, इंजीनियरिंग, वकालत, ज्योतिष आदि ये सब ब्राह्मणवर्ण के अन्तर्गत समझे जाते हैं। और जितने भी राज्यसम्बन्धी कार्य हो सकते हैं चाहे वे शासन–विभाग (Civil) से सम्बन्धित हों चाहे सेना विभाग (Military) से, वे सब क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत माने जाते हैं। और जितने काम, व्यापार, कला–कौशल और कृषि आदि से सम्बन्धित होते हैं, वे सब वैश्य वर्ण के अन्तर्गत स्वीकार किये जाते हैं; और श्रम श्रेणी के सभी कार्य शूद्र वर्ण के अन्तर्गत होते हैं।

(3) वर्णों के सम्बन्ध में कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं जिनके ध्यान में न रखने से हिन्दू समाज का बड़ा अनिष्ट हुआ है–

(क) इन वर्णों में प्रत्येक वर्ण वाला, अपने पेशे के काम में विशेषज्ञ हुआ करता है, इसलिये उनमें छुटाई बड़ाई का प्रश्न नहीं उठ सकता। भेद दो प्रकार के हुआ करते हैं एक श्रेणी (Kind) का भेद दूसरा दर्जा (Degree) का भेद। जिन वस्तुओं में श्रेणी का भेद होता है उनमें दरजों का भेद नहीं हुआ करता और न हो सकता है अर्थात् यह नहीं कह सकते हैं कि यह मेज घोड़ा से अच्छी है। हां, दस घोड़ों में यह कहा जा सकता है कि अमुक घोड़ा अन्यों से अच्छा है। इसी प्रकार 10 मेजों में भी यह बात कही जा सकती है कि अमुक मेज अन्यों से अच्छी है, इसलिये कि 10 घोड़े और 10 मेजें दोनों पृथक–पृथक एक–एक श्रेणी की चीजें हैं। इसी प्रकार यह वर्ण भी भिन्न–भिन्न श्रेणी के समूह हैं इनमें भी दरजों का भेद नहीं हो सकता अर्थात् यह नहीं कह सकते कि ब्राह्मण क्षत्रिय से ऊंचा है या शूद्र वैश्य से ऊंचा है इत्यादि।

(ख) वर्ण का प्रारम्भ ब्रह्मचर्य आश्रम के समाप्त होने के बाद हुआ करता है और मानव धर्मशास्त्र के अनुसार उसी समय किसी व्यक्ति की रुचि का भी पता चला करता है कि यह किस पेशे से धन कमाने की रुचि रखता है अर्थात् अध्यापन करके धन कमाना चाहता है या राज्य–सम्बन्धी कांम करके या अन्य कोई व्यवसाय करके। उसी के अनुकूल उसका वर्ण हो जाता है। इसलिये इन वर्णों का जन्म से न कोई सम्बन्ध है और न हो सकता है।

(ग) इस आश्रम या वर्ण-व्यवस्था में अमीरों और गरीबों के झगड़े का भी कोई प्रश्न नहीं उठ सकता इसलिये कि इनमें रहकर कोई मौरूसी अमीर नहीं बनने पाता क्योंकि प्रत्येक को प्रारम्भ और अन्त के दोनों आश्रमों, ब्रह्मचर्य और संन्यास, को गरीबी के साथ, व्यतीत करना पड़ता है, योरुप के श्रम और पूंजी(Lobour & Capital) के झगड़े भी इसीलिये यहां नहीं पैदा हो सकते।

(4) द्विज बनने के बाद ही मनुष्य आश्रम और वर्णों के अन्दर प्रविष्ट हुआ करता है; इसलिये द्विज बनने की योग्यता का विवरण ऋग्वेद में इस प्रकार दिया गया है-

द्विजमानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तः यजता अग्निजिह्वाः।। -(ऋग्वेद 6। 50। 2)

अर्थात् द्विजन्मा होने के लिये नियमबद्धता, सत्यता, सुब्रह्ममय, यज्ञशील और तेजस्वी वाणी वाला होना आवश्यक है। ऐसा बनकर ही प्रत्येक व्यक्ति आश्रम और वर्ण की दुनिया में प्रविष्ट होकर सकल-मनोरथ हुआ करता है।

(5) पश्चिमी मस्तिष्क इस आश्रम और वर्ण-व्यवस्था का पोषक है।

(क) डॉ0 रोवैक ने एक जगह स्प्रेंजर के हवाले से लिखा है कि मनुष्य जीवन के चार भाग हैं-

(1) गृहस्थ (2) ब्रह्मचर्याश्रम (3) वानप्रस्थ (4) संन्यासी।

(ख) रसकिन ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Unto Last में लिखा है-

जान रसकिन की सम्मति में जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रत्येक सभ्य जाति में, पांच (वैदिक) व्यवसाय प्रचलित हैं-

(1) क्षत्रिय, राष्ट्र की रक्षा के लिये।

(2) ब्राह्मण, राष्ट्र की शिक्षा के लिये।

(3) वैद्य राष्ट्र को स्वस्थ रखने के लिये।

(4) राष्ट्र का न्याय कराने के लिये।

(5) वैश्य जीवन सामिग्री प्रस्तुत करने के लिये।

इनमें से 2, 3, 4 ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत ही माने जाते हैं। इस प्रकार वैदिक व्यवसाय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों से सम्बन्धित तीन ही हैं। चौथा शूद्र वर्ण श्रम से सम्बन्धित है। रसकिन ने उपर्युक्त बौद्धिक व्यवसायों का इस प्रकार विवरण देते हुये एक बड़े महत्व की बात अन्त में लिखी है कि उपर्युक्त व्यवसाय वालों के लिये मरने का आवश्यक अवसर क्या है? यदि सिपाही युद्ध से भाग जाय, ब्राह्मण झूठ सिखलाने लगे, वैद्य प्लेग से डर कर भाग जाय, यदि वकील न्याय में विघ्न डाले, यदि व्यापारी अपने व्यवसाय में झूठा हो तो उन्हें मर जाना चाहिये। रसकिन ने अपने इस लेख के इस प्रकरण को इस प्रसिद्ध उक्ति के साथ समाप्त किया है कि "जिस व्यक्ति को मरना नहीं आता उसे जीना भी नहीं आ सकता।" विभक्ति की गई है-

(1) आर्य = अच्छा कर्म करने वाले, (2) दस्यु = अकर्मा और बुरे कर्मों को करने वाले। फिर

आर्यों को, समाज के कार्यों की पूर्ति के विचार को लक्ष्य में रखते हुये, चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभक्त किया गया है। यह कार्य-विभाजन मिलकर और बांटकर काम करने के सुनहरी नियमानुकूल किया गया है जिसका इससे पहले पृष्ठों में उल्लेख हो चुका है। इस विवरण से शूद्र और दस्यु का अन्तर असंदिग्ध रीति से प्रकट हो जाता है। परन्तु आर्यसमाज की स्थापना से कुछ पहले युग में, यह शूद्र और दस्यु पर्याय-वाचक हैं ऐसा समझा जाने लगा था। इसका परिणाम यह हुआ कि जो व्यवहार दस्युओं के साथ होना चाहिये था वह शूद्रों के साथ भी होने लगा। यह उस मूर्खता के युग का अत्याचार था जिसे पौराणिक युग भी नहीं कह सकते। वैदिक शूद्र आर्य है और सभी लोक व्यवहार में आर्यों का सा उसके साथ व्यवहार हुआ करता था; श्रीरामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ में, जहां हम उसे यज्ञ के अतिथियों की भोजनशाला का इन्चार्ज देखते हैं और जहाँ हम उस शाला में भोजन बनाते, अतिथियों को भोजन कराते तथा उनमें से कुछ को, उन अतिथियों के साथ भोजन करता हुआ पाते हैं, वहां दूसरी ओर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी, उस वैदिक शूद्र समुदाय को, यही सब कृत्य करते हुए देखा जाता है परन्तु पौराणिक शूद्र, इस वैदिक शूद्र से भिन्न है और वह पौराणिक शूद्र वैदिक दस्यु है, वैदिक शूद्र नहीं। यह वैदिक दस्यु पौराणिक शूद्र कैसे बना, इसका भी हेतु वह यह कि उन दस्युओं को आर्य = श्रेष्ठ बनाने और उनसे बुराइयों के छुड़ाने के उद्देश्य से उन्हें शूद्र के श्रम कार्यों मेंसे कुछ बढ़ई लुहार आदि के कार्य करने लग गये। और वे ऐसा करने भी लगे इसका होते-होते परिणाम यह हुआ कि वे भी शूद्र कहे जाने लगे। परन्तु उनके साथ, दस्युओं के साथ किये जाने का जो व्यवहार था, उसमें तब्दीली नहीं की गई, यह व्यवहार ज्यों का त्यों बना रहा। इसलिए वे शूद्र तो बने परन्तु अपने से घृणा दूर नहीं करा सके; बल्कि अपने साथ वैदिक शूद्रों को भी ले बैठे दोनों एक कोटि में गिने और माने जाने लगे। ❁

व्यक्तित्व का प्रभाव

दयानन्द पर विजय पाना असम्भव था, क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे, उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात् हो जाया करता था। वे लोक जल की प्रबल बाढ़ के साथ दयानन्द की तुलना किया करते थे। शंकराचार्य के पश्चात् दयानन्द जैसा वेदविद् भारतभूमि में उत्पन्न नहीं हुआ। दयानन्द की उग्र और प्रौढ़ शिक्षायें भारत देशवासियों की इच्छा के अनुकूल थीं और उन शिक्षाओं से भारतीय राष्ट्रीयता का सर्वप्रथम नवजागरण हुआ। – **प्रसिद्ध केंथ ग्रन्थकार रोमा मोल्य**

जब हमें कोई दु:ख दे तब उसे रेत पर लिंख देना चाहिए ताकि हवायें आकर मिटा दे लेकिन जब कोई भला करे तब उसे पत्थर पर लिख देना चाहिए ताकि वह हमेशा के लिए रह जाये और दूसरों के लिए आदर्श बन जाय।

साहित्य-सृजन के पांच दशक

लेखकः डॉ० भवानीलाल भारतीय, जोधपुर (राज०)

वाणी की ही भांति लेखन भी आत्मा की अभिव्यक्ति का साधन है। मनुष्य जो कुछ सोचता है, अनुभव करता है, जिन भावों को अनुभूति का विषय बनाता है, जीवन और जगत् के प्रति उसकी जो प्रतिक्रिया होती है। उसे वह लेखन के द्वारा दूसरों तक सम्प्रेषित करता है। यह सम्प्रेषण ही लेखन है और इसमें यदि कलात्मकता, सौन्दर्य, प्रासादिकता, सघनता आदि गुण आ जाते हैं तो वही लेखन साहित्य की कोटि में आ जाता है। लेखन प्रायः स्वतः स्फूर्त और स्वान्तः सुखाय ही होता है, किन्तु कालान्तर में उसकी गुणवत्ता उसे एक बड़ा पाठक-वर्ग प्रदान करती है। परिणामस्वरूप लेखक को ख्याति, अर्थ, सम्मान आदि भी मिलते हैं। जब मैं अपने आधी सदी में फैले लेखन कर्म की ओर दृष्टिपात करता हूँ तो पता चलता है कि प्राइमर कक्षाओं में पढ़ा गया बाल साहित्य और बाल पत्रिकायें ही मेरे लेखन कर्म की प्रेरक रहीं।

उन दिनों इण्डियन प्रेस इलाहाबाद हिन्दी की प्रमुख प्रकाशन संस्था थी जिससे सरस्वती जैसी प्रख्यात साहित्यिक मासिक पत्रिका और बाल-सखा नामक एक बालोपयोगी मासिक छपता था। लेखन के विशाल भवन में प्रवेश दिलाने का श्रेय मैं इसी बाल पत्रिका 'बाल-सखा' को तथा उसके सम्पादक ठाकुर श्रीनाथ सिंह को देता हूँ। इस पत्रिका में बच्चों के लिए मनोरंजक सामग्री रहती थीं। कहानियाँ, ज्ञानवर्धक लेख, यात्रा विवरण, पत्र मित्रों की डाक, चुटकुले तथा पहेलियां-इन्हीं से बालसखा का कलेवर भरा रहता था और यह सामग्री उस समय मेरे जैसे शिशु पाठकों के लिये कितनी रोचक, प्रेरणाप्रद तथा मन में आनन्द की असीम हिलोरें उठाने वाली होती थीं, इसका अनुमान करना आज भी कठिन नहीं है। मेरी दृष्टि में इस पत्रिका के सम्पादक साहित्य जगत् के महानायक थे और बालसखा में स्थान पाने वाले लेखक पराकोटि के व्यक्ति थे। मैंने भी इसमें प्रकाशित कराने के लिए एकाधिक बार पहेलियां और चुटकुले भेजे। पहेलियां तो छपीं किन्तु चुटकुलों को स्थान नहीं मिला। जो हो, मेरे लेखकीय जीवन का समावर्तन तो हो ही गया, आगे के लिये दिशा तो खुल ही गई।

1945 में मैं प्रथम वर्ष कला का छात्र था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन गुजराती के मूर्धन्य साहित्यकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की अध्यक्षता में हुआ। मैं अपने कुछ मित्रों के साथ इस सम्मेलन में भाग लेने उदयपुर गया। यात्रा में दिल्ली के एक पत्रकार (अब स्वर्गीय) फतहचन्द्र शर्मा आराधक से परिचय हुआ। वे उन दिनों पहाड़ी धीरज दिल्ली से 'गोपाल' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे। यह पत्र मुख्यतः गोपालन तथा गोसम्बर्द्धन को ही समर्पित था, किन्तु इसमें अन्य प्रकार की सामग्री भी छपती थी। आराधक जी स्व0 पंडित मदनमोहन मालवीय जी महाराज की प्रेरणा से ही पत्र

चलाते थे। सम्मेलन का तीन दिन का कार्यक्रम मुझ जैसे किशोर के लिए अत्यन्त उत्साहप्रद था। अनेक दिग्गज लेखकों, साहित्यकारों, कवियों तथा पत्रकारों को देखने, सुनने का अवसर मिला। सम्मेलन के प्राणस्वरूप श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, मुन्शी जी, चन्द्रबली पाण्डेय आदि उस समय राष्ट्रभाषा आन्दोलन को गतिशील बनाने में अग्रसर थे। दिनकर, रामकुमार वर्मा, जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी आदि कवियों को सुनने का अवसर तो अलभ्य था ही, श्रीमती सावित्री दुलारेलाल, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, किशोरीदास वाजपेयी, डॉ0 बलदेवप्रसाद मिश्र जैसे हिन्दी के जाने–माने हस्ताक्षरों के विचारों को भी सुना। पत्रकार प्रवर बनारसीदास चतुर्वेदी और मेरी प्रिय बालसखा के सम्पादक ठाकुर श्रीनाथसिंह भी सम्मेलन में उपस्थित थे। यह सम्मेलन कई दृष्टियों से विशेष महत्वपूर्ण था। प्रथम तो उन दिनों महात्मा गांधी ने सम्मेलन से त्यागपत्र दे रखा था, उसे इसी अधिवेशन में सखेद स्वीकार कर लिया गया। महात्मा जी यद्यपि इससे पहले दो बार सम्मेलन के अध्यक्ष रह चुके थे किन्तु कतिपय राजनैतिक कारणों से राष्ट्रभाषा विषयक उनकी रीतिनीति में परिवर्तन आ गया था। पहले जहां वे भारत की राष्ट्रभाषा के लिये हिन्दी का अधिकार निर्विवाद रूप से स्वीकार करते थे, अब वे राष्ट्रभाषा के लिए हिन्दी की अपेक्षा 'हिन्दी–हिन्दुस्तानी' या केवल 'हिन्दुस्तानी' शब्द के प्रयोग को वांछनीय समझने लगे थे। उनकी दृष्टि में भारत की राष्ट्रभाषा को नागरी तथा फारसी दोनों लिपियों में लिखा जाना अभीष्ट था तथा वे राष्ट्रभाषा के रूप में उस भाषा को स्वीकार करने पर जोर देते थे जो संस्कृत के शब्दों को तो वेशक ग्रहण करे किन्तु फारसी–अरबी के शब्दों से भी जिसे परहेज न हो। सम्मेलन द्वारा पोषित और प्रचारित राष्ट्रभाषा की कल्पना कुछ भिन्न प्रकार की थी। सम्मेलन उस भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहता था जो अपनी शब्द–सम्पत्ति के लिए मुख्यतया संस्कृत पर ही निर्भर हो (यद्यपि अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करने में उसे आपत्ति नहीं थी) तथा जो नागरी में लिखी जाती हो। टण्डन जी और मुन्शी जी राष्ट्रभाषा विषयक इसी नीति के पक्षपोषक थे और सम्मलन में उपस्थित अधिकांश प्रतिनिधि (एक दो को छोड़कर) भी इसी राय के थे। फलतः महात्मा जी की सम्मेलन से त्यागपत्र देने की इच्छा को उपस्थित प्रतिनिधियों ने खेदपूर्वक स्वीकार कर लिया।

एक अन्य प्रश्न जो सम्मेलन के प्रतिनिधियों को आन्दोलित कर रहा था वह था जनपदीय भाषाओं को महत्व देने का प्रश्न! ब्रज, अवधी, खड़ी बोली आदि। उपभाषाओं में रचित साहित्य तो हिन्दी का साहित्य माना ही जाता था। किन्तु राजस्थानी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं के बारे में सम्मेलन की क्या नीति हो, यह समस्या सभी उपस्थित लोगों को आन्दोलित कर रही थी। इस बात से तो किसी को इन्कार नहीं था कि ब्रज और अवधी की ही भांति डिंगल या पुरानी राजस्थानी में रचित साहित्य को भी हिन्दी साहित्य का ही अंग माना जाता रहा है और आधुनिक राजस्थानी में लिखने वाले रचनाकारों के प्रयासों का भी अभिनन्दन किया जाना चाहिये, किन्तु चिन्ता इस बात को लेकर थी कि राजस्थानी को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अत्यधिक उत्साहित व्यक्तियों की आन्दोलनात्मक गतिविधियां कहीं राष्ट्रभाषा आन्दोलन में बाधक न बन जाएं और प्रान्तीय अथवा क्षेत्रीय भाषाओं की अस्मिता का प्रश्न हिन्दी को

राष्ट्रीय महत्व दिलाने जैसे गुरुतर कार्य में बाधक न बने।

बात यह थी कि उदयपुर अधिवेशन में राजस्थानी के कुछ कट्टर समर्थक उपस्थित थे और वे हिन्दी बनाम राजस्थानी जैसा उग्र विवाद छेड़ने के लिए तत्पर थे। इन राजस्थानी भक्तों के आक्रामक रवैये का प्रतिरोध करने का संकल्प सम्मेलन के वरिष्ठ नेताअें ने कर रखा था, फलतः उन्होंने एक सन्तुलित दृष्टि अपनाते हुए यह निर्णय किया कि यद्यपि हिन्दी–साहित्य–सम्मेलन जनपदीय या क्षेत्रीय भाषाओं का विरोधी नहीं है, किन्तु वह यह भी नहीं चाहता कि इन भाषाओं का प्रचार–प्रसार करने के किसी प्रयास से राष्ट्रभाषा आन्दोलन को क्षति पहुंचे। उदयपुर में राजस्थानी के एक कट्टर समर्थक बीकानेर से आए आशाकान्त बी0 आचार्य नामक सज्जन का मुझे स्मरण है जो भाषा के प्रश्न को लेकर अत्यन्त आन्दोलित थे और टण्डन जी को हिन्दी के साम्राज्यवाद का प्रसारक कहने में भी संकोच नहीं करते थे।

मैंने उदयपुर सम्मेलन की विस्तार से जो चर्चा की है उसका कारण भी मेरे प्रथम लेखकीय प्रयास से जुड़ा हुआ है। सम्मेलन से लौटकर मैंने 'उदयपुर अधिवेशन के संस्मरण' शीर्षक से एक लेख लिखा जिसे आराधक जी ने अपने पत्र 'गोपाल' में तो प्रकाशित किया ही, उस समय के हिन्दी के प्रमुख साप्ताहिक 'वीर अर्जुन' (सम्पादक रामगोपाल विद्यालंकार तथा कृष्णचन्द्र विद्यालंकार) ने भी थोड़ा संक्षिप्त कर प्रकाशित किया। 1845 के वर्ष में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति तो हो गई थी, किन्तु रूस की विजय ने भारत में साम्यवादी आन्दोलन को प्रबल कर दिया था। जिन्होनें युद्ध में प्रथम भाग लेने वाली इंग्लैंड तथा अमेरिका जैसी शक्तियों की कटुशब्दों में आलोचना की, वे ही भारत के कम्युनिस्ट अब रूस द्वारा जर्मनी के विरोध में हथियार उठा लेने पर इस युद्ध को लोक युद्ध (People's War) कहने लगे थे। साम्यवादी की रीति–नीति को भी प्रभावित करना चाहते थे। प्रगतिवाद के नाम पर रूस के विचारों को कवियों तथा लेखकों द्वारा अपनाया जाना प्रगतिशीलता की निशानी समझी जाती थी। लाल रूस को शोषित वर्ग के परित्राता तथा पूंजीवादी–साम्राज्यवादी व्यवस्था के विनाशक के रूप में चित्रित किया जाता था। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक–भौतिकवाद को साहित्यकारों के लिए आदर्श विचार–संहिता माना जाता था। उदयपुर सम्मेलन में भी साम्यवाद से प्रतिबद्ध कुछ साहित्यकार आए थे। इनमें कम्युनिस्ट पार्टी के साहित्यिकपत्र लोकसाहित्य के सम्पादक रमेशचन्द्र सिन्हा का नाम प्रमुख था। राष्ट्रकवि दिनकर ने इस अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन के अध्यक्षपद से जो अभिभाषण दिया उसमें हिन्दी के तथाकथित प्रगतिशील साहित्यिकारों की यह कह कर आलोचना की गई थी कि केवल मार्क्स और रेंगेल्स ही साहित्यकार के आदर्श नहीं हो सकते। उसे प्रेरणा देने वाले स्रोतों की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती और किसी देश या विचारधारा विशेष से बन्ध कर ही साहित्य लिखना लेखन कर्म का उत्कृष्ट मानदण्ड नहीं हो सकता। मैंने अपने इस लेख में साम्यवादी साहित्यकारों के उपर्युक्त दृष्टिकोण की भी आलोचना की थी।

राजस्थानी का समर्थन करने वाले जिन लेखकों और नेताओं ने इस विवाद को पर्याप्त कटुतापूर्ण तथा हिन्दी–विरोधी बना दिया था। उनकी आलोचना में भी मैंने एक लेख लिखा जिसे वीर

अर्जुन ने अपने एक अंक (1945 ई0) में स्थान दिया। इस प्रकार हिन्दी-लेखन की प्रयोगशाला में मैं एक नौसिखुबे की भांति प्रविष्ट हुआ। कथा-साहित्य में मेरी अभिरुचि तो बाल्यकाल से ही थी। कालेज तक आते-आते मैंने हिन्दी के लगभग सभी प्रमुख कथा लेखकों की रचनाओं को पढ़ डाला था। उधर शरत, रवीन्द्र तथा बंकिम जैसे बंगला के समर्थ कथाकारों की कृतियां भी इसी काल में मैंने पढ़ीं। शरत के उपन्यासों में मानव-मन (नर और नारी) की जैसी सूक्ष्म व्यंजना दिखाई देती है वैसी अन्यत्र कम मिलती है। शरत के उपन्यासों पर विस्तार से लिखने का विंचार था, किन्तु कालान्तर में मेरे लेखन का प्रवाह जब आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के विवेचन की ओर मुड़ गया तो शरत साहित्य की विवेचना का विचार ही छूट गया।

मैं जब प्रथम वर्ष कक्षा का छात्र था, मुझे गुजराती के समर्थ कथाकार कन्हैयालाल मुंशी के उपन्यासों को पढ़ने का अवसर मिला। 'वैर नी वसूलात' में प्रेम के भावुक प्रसंगों को जिस सहृदयता से चित्रित किया गया है, उन्हें पढ़कर मेरा किशोर हृदय अभिभूत हो उठा। फिर तो मुंशीजी के 'कोनों वांक' (किसका अपराध) तथा 'स्वप्न द्रष्टा' आदि अन्य सामाजिक उपन्यास भी पढ़े और गुजरात के मध्यकालीन इतिहास को आधार बनाकर लिखी गई उनी उपन्यासत्रयी (पारण नी प्रभुता, गुजरात नो नाथ तथा राजाधिराज) को तन्मयता से पढ़ा। सर वाल्टर स्काट की शैली ऐतिहासिक घटनाओं का अवतारणा तथा ड्यूमा की शैली के ऐतिहासिक रोमांस का सृजन मुंशी की इन कृतियों की विशेषता है। मैंने गुर्जर साहित्य के गौरव रूप इन उपन्यासों को लेकर दो तीन अच्छे लेख लिखे और उन्हें वीर अर्जुन में प्रकाशनार्थ भेजा। इन लेखों के पारिश्रमिक रूप में जब कुछ राशि मनीआर्डर द्वारा मुझे प्राप्त हुई तो मेरे हर्ष का पारावार नहीं था। मैं यह सोच कर रोमांचित हो रहा था कि मेरा लेखन भी महत्व का है और उसे पुरस्कृत किया जा रहा है।

कन्हैयालाल मुंशी के उपन्यासों के अध्ययन ने मुझे विभिन्न भाषाओं में लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यासों और नाटकों को पढ़ने तथा उन पर विस्तार से लिखने की प्रेरणा दी। अब मैं योजनाबद्ध ढंग से इस लेखन में प्रवृत्त हुआ। बंगाल के मूर्धन्य लेखक और ऐतिहासिक उपन्यासकार बंकिम की ऐतिहासिक कृति 'राजसिंह' (रूपनगर के राजा की पुत्री चंचलकुमारी को औरंगजेब के द्वारा हरम में दाखिल किए जाने के प्रयास और मेवाड़ के महाराणा राजसिंह द्वारा उसकी रक्षा की घटना पर आधारित) को तो मैंने बचपन में ही पढ़ा था किन्तु उनकी अन्य ऐतिहासिक कृतियों (आनन्द मठ, सीताराम, दुर्गेशनन्दिनी आदि) को पढ़ने का अवसर बाद में मिला। मराठी में हरिनारायण आपटे के ऐतिहासिक उपन्यासों से मेरा परिचय हुआ और मैंने उन पर एक लेख लिखा। उन दिनों दिल्ली से नवभारत दैनिक (अब नवभारत टाइम्स) का प्रकाशन आरम्भ ही हुआ था। आप्टे के उपन्यासों पर लिखे गए मेरे लेख को इस पत्र के रविवारीय अंक में स्थान मिला। बंगला के प्रमुख नाटक-लेखक द्विजेन्द्रलाल राय ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास को लेकर अनेक प्रभावशाली नाटक लिखे हैं। इनका प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई ने किया था और मैंने अपने कालेज के अध्ययन काल में इन्हें रुचिपूर्वक पढ़ा था। राय की ऐतिहासिक नाट्य कृतियों पर लिखा गया मेरा एक लेख नवभारत में छपा। **-(शेष अगले अंक में)**

गोमेध का सच्चा अर्थ

लेखकः पं० दामोदर सातवलेकर

वैदिक यज्ञों में 'पशुवाचक शब्द आते हैं, अत: वेद की वर्णनशैली से अनभिज्ञ लोग उससे उक्त पशु का मांस ही समझते हैं। किन्तु यह उनका भ्रम है, क्योंकि–

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यज्ञ धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्।।

–(अथर्ववेद19/31/5)

'मैं पशुओं से पुष्टि लेता हूँ, द्विपाद और चतुष्पादों से भी पुष्टि तथा धान्य लेता हूँ। पशुओं से दूध तथा ओषधियों से रस बृहस्पति सविता देव ने मुझे दिया है।' अत: इस मन्त्र के अनुसार पशु–शरीर के रक्त मांस, हठ्ठी, चर्बी, दूध आदि पदार्थों में से 'पशूनां पय:'–केवल पशुओं का ही दूध लेना चाहिये। और मन्त्र देखिये–

(1) आ हरामि गवां क्षीरमाहार्ष धान्यं रसम्।। –(अथर्व0 1। 26। 5)
(2) सिंच्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।। –(अथर्व0 2। 26। 4)
(3) इह पुष्टिरिह रस:।। –(अथर्व0 3। 28। 4)

अर्थात्– (1) मैं गौओं से दूध लेता हूँ, भूमि से धान्य तथा ओषधियों से रस लेता हूँ।
(2) मैं गौओं के दूध से सिंचन करता हूँ तथा घी से बलवर्द्धक रस लेता हूँ।
(3) यहाँ गौ के भीतर पुष्टि और रस हैं।

वेदों का यह वास्तविक आशय ध्यान में रखकर ही मन्त्रों का अर्थ लगाना चाहिये अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इस वास्तविक अर्थ के विपरीत जो पशुओं के अंगों का हवन करते हैं, उनको वेद ने 'मूर्ख' कहा है।

'मुग्धा देवा उत शुना यजन्तीत गोरंगैः पुरुधायजन्त।' –(अथर्व0 7। 5। 5)

अर्थात्– 'मूढ़ याजक ही (यहाँ देव शब्द याजकों का वाचक है) कुत्ते के अंगों से तथा गौ के अंगों से अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं।'

विचार करने की बात है कि गौ का वैदिक नाम 'अघ्न्या' (अवध्य) तथा यज्ञ का नाम 'अध्वर' (अहिंसामय कर्म) है, तथा इस मन्त्र में भी मांस हवन करने वाले याजकों को 'मुगधा देव' अर्थात् प्रमादी अथवा मूढ़ याजक कहा है तो गोमेध में गोहिंसा और गोमांस का हवन किस प्रकार हो सकता है? शास्त्रविहित वैदिक यज्ञों में गोमांस का प्रयोग नहीं होता था, इसके अनेकों प्रमाण चारों वेदों के संहिता–मन्त्रों में हैं। स्थानाभाव के कारण उन सबका विचार तो यहाँ नहीं हो सकता, हाँ, अथर्ववेद में गोमेधविषयक दो सूक्त हैं, जिनका अर्थ मांस–पक्षवाले गो–मांस भक्षण के पोषक रूप में करते हैं, उन्हीं

का थोड़ा-सा विवरण इस लेख में दिया जा रहा है।

अथर्ववेदान्तर्गत 'गोमेध' का प्रथम सूक्त

उक्त वेद के दसवें काण्ड में नवें तथा दसवें सूक्त गोमेध विषयक हैं, उनमें से पहले नवें सूक्त के मन्त्र अर्थसहित नीचे दिये जा रहे हैं-

अघायतामपि नह्या मुखानि सपक्षेषु वज्रमर्पयैतम्।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः।। 1।।

पाप करने वालों के मुख बन्द करके शत्रुओं पर यह शस्त्र चलाओ। यजमान को यश देनेवाली तथा शत्रु का नाश करनेवाली पहली शतौदना गौ इन्द्र ने दी है।

वेदिष्टे धर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।
एषा स्वा रशनाप्रमीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु।। 2।।

हे गौ ! तेरा चर्म वेदी बने, जो लोम हैं वे बर्हिदर्भ के स्थान पर हों। यह रस्सी तुझे अच्छी रीति से धारण करे और यह यज्ञ का ग्रावा तेरे ऊपर नाचता रहे।

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं माष्टघ्न्ये।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने।। 3।।

तेरे बाल पवित्र जल के स्थान पर समझे जायें। हे वध करने के अयोग्य गौ ! तेरी जीभ तुझे स्वच्छ करे। हे शतौद ने ! तू शुद्ध और यज्ञिय होकर स्वर्ग को जा।

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते।
प्रीतः ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम्।। 4।।

जो शतौदना को पाल-पोसकर पुष्ट करता है, उसकी इच्छा पूर्ण होती है। उसके सभी ऋत्विज संतुष्ट होकर जहाँ इच्छा होती है, वहाँ जाते हैं।

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः।
अपूषनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम्।। 5।।

जो मीठे पुए बनाकर उनके सहित शतौदना का दान करता है, वह दिव्य लोक में जाता है, जहाँ तीसरा स्वर्ग है।

स ताल्लोँ कान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम्।। 6।।

जो सोने के चमकदार आभूषण पहनाकर शतौदना गौ का दान करता है, वह यहाँ पर श्रेष्ठ स्थान और अन्त में दिव्यलोक को प्राप्त करता है।

येते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने।। 7।।

हे देवि! हे गौ !! जो लोग तुझे पुष्ट करनेवाले एवं शान्ति पहुँचानेवाले हैं, वे सब तेरी रक्षा करेंगे। हे शतौदने! तू इनसे भय मत कर (क्योंकि इनसे तुझे कोई कष्ट नहीं मिलेगा)।

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।
आदित्याः पश्चागदोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव।। 8।।

दक्षिण की ओर वसु, उत्तर दिशा से उन्चास मरुत्देव तथा पीछे से बारह आदित्यदेव तेरी रक्षा करेंगे। तू अग्निष्टोम नामक यज्ञ से भी आगे बढ़।

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव।। 9।।

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सराएँ–ये सब तेरी रक्षा करेंगे। इस प्रकार रक्षित होनेवाली तू अतिरात्र नामक यज्ञ से भी आगे बढ़ जा।

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिशः।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम्।। 10।।

जो शतौदना गौ का दान करता है, वह उन सब लोकों को प्राप्त करता है, जो अन्तरिक्ष, द्यु, भूमि, आादित्य, मरुत् तथा दिशाओं में है।

घृत प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने।। 11।।

घी देती हुई सौभाग्ययुक्त गौ देवी–देवताओं के समीप पहुँचती है। हे अवध्य माता! अपने पुष्ट करनेवाले की हिंसा मत कर और हे शतौदने! स्वर्ग को जा।

ये देवा दिविपदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु।। 12।।

जो देव द्युलोक, अन्तरिक्ष और भूमि पर हैं, उन सबके लिये तू दूध, घी और मधु दे।

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू।
आभिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु।। 13।।
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृंगे ये च तेऽक्षिणी।। आमिक्षां0 14।।
यत्ते क्लोमा युद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका।। आमिक्षां0 15।।
यत्ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः।। आमिक्षां0 16।।
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते।। आमिक्षां0 17।।
यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मासं यच्च लोहितम्।। आमिक्षां0 18।।
यौ ते बाहू ये दोषणी यार्वसौ या च ते ककुत्।। आमिक्षां0 19।।
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः।। आमिक्षां0 20।।

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्॥ आमिक्षां0 21॥

यत्ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः॥ आमिक्षां0 22॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः॥ आमिक्षां0 23॥

यत्ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये॥ आमिक्षां0 24॥

हे अवध्य शतौदने। जो तेरा दान करे उस यजमान को तेरे शरीर के समस्त अवयव-सिर, मुख, कान, ठोड़ी, ओठ, नाक, सींग, आँख, हृदय, पेट, पुरीतत् नाड़ी, गला, यकृत, प्लीहा, आंतें, गुदा, बगलें, चर्म, मज्जा, हड्डियाँ, मांस, रक्त, बाहु, कंधा, कूबड़, गर्दन, पीठ, पसलियाँ, जाँघें, घुटने, पुटठे, चूतड़, पूँछ, बाल, ऊधस, स्तन, पिंडलियाँ, खुर आदि अंग; दूध, घी, दही तथा मधु आदि पदार्थ देते रहें॥13-24॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोडशावाज्येनाभिघारितौ।

तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह॥ 25॥

हे गौ देवी! तेरे घी से सिंचित दो पुरोडाश मध्य में हों। जो तुझे पुष्ट करनेवाला हो, उसके इन्हीं दोनों पुरोडाशों के दो पंख लगाकर उसे स्वर्ग को उठा ले जा।

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः।

यं वा वातो मातरिश्वा पवमानोममाथाग्निष्टद्धौता सुहुतं कृणोतु॥ 26॥

ऊखल, मूसल, चमड़ा, सूप-इनमें जो चावल या कणों का समुदाय हो, जिसकी शुद्धता वायु ने की हो, ऐसे अन्न को होता और अग्नि हवन के द्वारा पवित्र बनाये।

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि।

यत्काम इदमभिषिञ्चामि बोऽहुं तन्मे सर्व सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ 27॥

मैं यह दिव्य जल ब्राह्मणों के हाथों में पृथक् पृथक् छोड़ता हूँ। जिस इच्छा से मैं तुम्हें सिंचन करता हूँ, मेरी वह कामना पूर्ण हो और हम सब धनों के स्वामी बनें।

उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा में ही गोदान का उल्लेख है-'इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना' अर्थात् पहली शतौदना गौ इन्द्र ने दी। आगे मन्त्र-संख्या 5 । 6 । 10 में 'यो ददाति शतौदनाम्' शब्दों से शतौदना गौ के दान का स्पष्ट निर्देश है। अन्तिम ऋचा में ब्राह्मणों के हाथों पर पृथक-पृथक् जल दाता छोड़ता है और इस गोदान से अपनी मनःकामना पूर्ण होने तथा धन का स्वामी होने की प्रार्थना करता है। इस प्रकार इस पूरे सूक्त में गोदान के विषय पर ही विचार किया गया है, यह स्पष्ट है इन 27 ऋचाओं में 'अघ्न्य' अर्थात् 'अवध्य' शब्द गौ के सम्बोधन के रूप में तीन बार आया है। (ऋ0 3। 11। 24)

इतना सब होते हुए भी 'दिवं प्रेहि शतौदने' ॥ 3॥ 'यः शतौदनां पचति'॥ 4॥ 'पक्तारः शमितारः॥ 7॥ 'पक्तारम्' ॥ 11॥ आदि पदों से वैदिक-काल में मांस-भक्षण प्रथा को मानने वाले लोग यह अर्थ निकालते हैं कि गोमेध में गौ को मारकर उसके अवयवों का हवन होता था। यह कथन कितना भ्रामक और असत्य है, इसका विचार आगे किया जायगा; पहले गोमेध-सम्बन्धी द्वितीय सूक्त का अर्थ देखिये।

प्रभु भक्ति का वैदिक स्वरूप:

लेखकः डॉ0 सत्यदेवसिंह, अशोकासिटी, मथुरा (उ.प्र.)

आत्मिक शान्ति और पूर्णानन्द को प्राप्त करने के लिये यह जीव मानव देह के रूप में धरती पर उत्पन्न हुआ है। यही इसके जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिए यह जीव सुख और शान्ति की खोज में इधर-उधर चक्कर काटता है, दर-ब-दर भटकता है और ठोकरें खाता फिरता है। इसके जीवन के सारे क्रिया कलाप व सारी उधेड़बुन केवल जीवन को शान्त और सुखमय बताने के लिये ही है, किन्तु इस जीवन संग्राम में इतनी खट-पट और उधेड़बुन करने पर भी जीव उस सच्चे सुख और शान्ति के स्थान पर अत्यन्त क्लेश, दुःख व अशान्ति का ही अनुभ्व करता है। संसार के नाना-प्रकार के सुखप्रद विषयों और वैभवों का भोग करता हुआ भी, वह उनमें उस शान्ति व आनन्द का अनुभव नहीं करता, जिसकी उसे चिर-अभिलाषा रही है। ऐसा क्यों? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि मनुष्य जिन भौतिक पदार्थों में परमानन्द और परमशान्ति का अभिलाषी बन भटक रहा है, वे पदार्थ स्वयं सुख और शान्ति से रहित है, कोसों दूर हैं। भला जिसके पास जो वस्तु है ही नहीं, वह दूसरे का क्या दे सकेगा? जो स्वयं भूख व प्यास से तड़प रहा है, वह हमें कैसे स्वादिष्ट भोजन तथा मधुर जल का पान करा सकता है और हमारी भूख व प्यास शान्त कर सकता है? इसीलिए आत्मा जब इन भौतिक पदार्थों में भटक कर निराश हो जाती है, उसे अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। इतना ही नहीं, प्रत्युत् वह संसार के विविध विषयभोग और आमोद-प्रमोद, सुख और शान्ति के स्थान पर विरीततः उसके दुःख व अशान्ति का कारण बन जाते हैं, परिणामतः वह (जीवात्मा/मनुष्य) निराश हो जाता है, कुण्ठाग्रस्त हो जाता है, उसकी आत्मा संतप्त और व्याकुल हो उठती है, उसे चारों ओर विषय-वासनाओं की जलती हुई प्रचण्ड ज्वालायें व्याकुल और अत्यन्त अशान्त बना देती है। ऐसी विषम अवस्था में मनुष्य को अपनी लाज बचाने के लिये, सुखमय जीवन जीने के लिए व परमशान्ति पाने के लिये उसे परमात्मा, ईश्वर या परमप्रभु की याद आती है उत्कट-अभिलाषा रूपी अभीप्सा जागृह होती है और वह पश्चाताप करता हुआ, वेद के शब्दों में परम प्रभु को पुकार उठता है-

" **सं मां तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।।**" -(ऋग्वेद 1/ 105/ 8)

अर्थात् हे दीनबन्धु! हे अधमोद्धारक पतितपावन प्रभो! अब तो मुझे ये तृष्णायें, संसार की ये क्षणिक कामनायें और विषयों की ये विषभरी वासनायें सपत्नियों के समान सन्तप्त और व्याकुल कर रही हैं। हे प्रभो! अब मैं (भक्त) सब ओर से निराश होकर तेरे द्वार पर खड़ा हूँ, तेरे पास आया हूँ। हे दीनबन्धो! क्या इस दीन-भक्त की पुकार न सुनोगे? क्या अपने इस भक्त को संसार की क्षणिक वासनाओं से और तृष्णाओं से हटाकर अपनी प्रेममयी पावन गोद में नहीं लोगे? ऋषि दयानन्द के शब्दों

में उस समय परम प्रभु अपने भक्त या साधक की करुण पुकार को सुनते हैं, हाँ जरूर सुनते हैं और उसे अपनी सर्व-शक्तिमयी गोद में ले लेते हैं। यह परम प्रभु अपने शरणागत उपासक (भक्ति) को निज शरण में ले लेते हैं।

वास्तव में योगीजनों के शब्दों में इस संसार में अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनेश नामक पंचक्लेषों से सन्तप्त और परिणाम-ताप-संस्कार-गुणवृत्ति विरोध नामक दुःखों से दुःखी जीव के लिए एकमात्र ववह, सच्चिदानन्द प्रभु ही सच्ची शान्ति और नित्य सुख का सहारा है। इसीलिए वेद कहता है-

"न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।" -(ऋग्वेद 7/ 11/ 1)

अर्थात्- "हे आनन्दकन सच्चिदानन्द प्रभो! तेरी शरणागति के बिना तेरा यह अमृतपुत्र रूपी भक्त (साधक) पूर्णानन्द को प्राप्त नहीं कर सकता।"

"त्वमींडते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति।।" -(ऋ0 7/ 11/ 2)

पदार्थ- 1. अग्नि = अग्रणी प्रभो! हविष्मन्तः = हविवाले त्यागपूर्वक अदन वाले, मानुषासः = विचारशील लोग, सदम्+इत = सदा ही, दूत्याय = दूतकर्म के लिये, ज्ञान का सन्देश प्राप्त करने के लिये, अजिरम= गति के द्वारा सब बुराइयों को परे हटाने वाले, त्वां ईडते = आपको उपासते हैं। हम ज्ञान का सन्देश प्राप्त करने के लिए उस अजिर अग्नि की उपासना करें, उससे ज्ञान-सन्देश प्राप्त करें। सदा विचारशील बनकर हविवाले हों (मस्तिष्क के लिये ज्ञान और हाथों से यज्ञ)

2. हे प्रभो! जिस भी उपासक के, बर्हिः = वासनाशून्य हृदय में आप, देवैः = देवों के साथ, आसदः= आसीन होते हैं, अस्मै = इसके लिये, अहानि = सब दिन, सुदिना = शुभदिन, भवन्ति हो जाते हैं।

मन्त्रसारः- हम त्याग पूर्वक अदनवाले विचारशील उपासक बनें हमारे हृदयों में देवों के साथ प्रभु का वास हो। इस प्रकार हमारे सब दिन, शुभदिन हों।

वस्तुतः जो मनुष्य (जीवात्मा) अपने जीवन को कदाचारों व कुत्सित संस्कारों से हटाकर, जब परम प्रभु परमात्मा की शरण में आ जाता है, या यों कहें कि जब भक्क्त। साधक या शरणागत मनुष्य अपनी अधमावस्था पर पश्चाताप करता हुआ, उस अधम-अवस्था का परित्याग करता हुआ सत्पुरुषों की संगति में आ जाता है और सन्मार्गगामी बन जाता है, तब परमपिता परमात्मा अवश्य ही कृपा करके अपने भक्त/साधक के ऊपर सब प्रकार के सुखों की वर्षा करते हैं। इस सन्दर्भ में वेद की निम्नांकित ऋचा (मन्त्र) स्पष्टतः कहती है-

"त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि। त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते। त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्याः।।" -(ऋ0 मं0 2, सू0 1 मं0 3))

अर्थात्- हे परम ज्योतिर्मय प्रभो! तुम ही तो सत्पुरुषों के लिए, अपने अनन्य भक्तों! साधकों के लिए इन्द्र और वृषभ बन कर, उसके समग्र ऐश्वर्यों और सकल सुखों की वर्षा करने वाले हों।

अथर्ववेद के अन्तर्गत भी इस विषय में एक मन्त्र इस प्रकार कहता है-

"मा ते भयं जरितारम्।" -(अथर्व0 1/ 186/ 4)

अर्थात्- तेरे भक्त/ साधक को भय, चिन्ता या दुःख कहाँ? वेद के इस वचन से सिद्ध होता है कि एक मात्र प्रभु भक्ति, प्रभु शरणागति ही, यहाँ भव-बन्धन में पड़े हुये जीव (मनुष्य) को, सुख-शान्ति और परमानन्द प्रदान करने वाली है।"

बिना ईश्वर की आराधना के, उपासना के जीवात्मा को परमशान्ति और परमानन्द की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, अपितु नितान्त असम्भव है। वेद वाणी भी यही निर्देश दे रही है-

"तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।" -(यजु0 31/ 19)

अर्थात्- तमेव = उसको (परमात्मा को) ही, विदित्वा= जानकर मनुष्य, मृत्युं = मृत्यु को, अति+एति= अतिक्रमण करता है, अयनाय= अभीष्ट स्थान तक पहुँचने के लिए अथवा परमानन्द को पाने के लिए, अन्यः= और कोई, पन्थाः = मार्ग, न = नहीं, विद्यते है। इस मन्त्रांश का सार है कि भव-सागर से पार जाने के लिए उस परम प्रभु को जानने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं है।

अब उस प्रभु का क्या स्वरूप है, थोड़ा इस पर विचार करना आवश्यक है। भक्ति में तीन बातों को जान लेना परमावश्यक है। हम किस की भक्ति करें, कैसे बनकर करें, और क्यों करें? इन तीनों बातों के जाने बिना जो जन भक्तिमार्ग पर चलने लगते हैं, वे सदा अपने चरम लक्ष्य से वंचित ही रहते हैं, उन्हें निज-अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। अतः भक्ति मार्ग के पथिक को उपर्युक्त तीनों बातों का जान लेना परमावश्यक है। वे तीन बातें या करणीय कर्तव्य इस प्रकार हैं।

भक्ति का पहला कर्तव्य है कि वह यह विचार करे कि जिसको वह अपना आराध्यदेव बनाने चला है, जिस सनदुर स्वरूप को वह अपने हृदय-मन्दिर में बैठाना चाहता है उसका क्या स्वरूप है? उसकी उपासना करने पर भक्त/ उपासक को अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति होगी या नहीं? भक्त आराध्यदेव की आराधना कैसे करें? इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में एक सुन्दर मंत्र आता है-

"तमुष्टुहि यो अन्तः सिन्धुः सूनुः। सत्स्य युवानभद्रोघवाचं सुशेवम्।।" -(अथर्व0 6/ 1/ 1)

अर्थात्- हे भक्त! यदि तू सच्ची शान्ति और परम-आनन्द को प्राप्त करना चाहता है तो (तम+उ+ स्तुहि) उस ही प्रभु की उपासना कर, (यः अन्तः सिन्धुः) जो इस संसार में रम रहा है, (सत्यस्यः सूनुः) जो सदा सत्य की ओर ही प्रेरणा करता है (युवानम्) जो सदा सर्वदा युवा अर्थात् एक रस रहता है, (सुशेवम्) जो सारे बलों, सुखों और आनन्द का भण्डार है और (अद्रोघवाचम्) जिसकी वाणी में किसी के प्रति असत्य, द्रोह और विश्वासघात नहीं है।

भक्त सोचता है मैं अपने प्रभु को कैसे मिलूं। मेरा वह प्रियतम मुझे कहाँ मिलेगा, और नाना प्रकार की तृष्णाओं और आसुरी वासनाओं रूपी तरंगों से तरंगित काम, क्रोध, राग, मोह, ईर्ष्या आदि जल-जन्तुओं से पूर्ण इस भव-सागर में मेरा कौन सहारा है? इन दोनों आशंकाओं का समाधान वेद एक

ही शब्द में करता है (तमु+स्तुहि+यो+ अन्तः सिन्धु) भक्त तू उस प्रभु की स्तुति कर जो सर्वव्यापक और सर्व अन्तर्यामी है। उस अराध्यदेव की आराधना करने के लिये तुझे अन्यत्र कहीं भटकना नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह तेरा अन्तर्यामी तो तेरे रोम-रोम में रम रहा है। फिर तुझे इधर-उधर जाने और भटकने की क्या आवश्यकता है और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि यह संसार एक अथाह सागर है, और यह जीव अपनी दुर्वासनाओं और निर्बलताओं के वशीभूत होकर अहर्निश इसमें गोते खा रहा है। परन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि भक्त उस करुणामय प्रभु का आश्रय ले लेता है, उसकी प्रेममयी गोद में बैठ जाता है और उसकी शरण में आ जाता है, वह इस भव सागर से तर कर पार हो जाता है।

प्रभु प्राप्ति का लक्ष्य केवल जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से छुटकारा पाना ही नहीं, प्रत्युत उससे छूटकर उस परमानन्द और परम शान्ति को प्राप्त करना है, जिसकी खोज में जीव जन्म-जन्मान्तरों से भटक रहा है। अतः भक्त सोच सकता है कि प्रभु की उपासना से मैं जन्म-मरण के बन्धन से तो छूट जाऊँगा, किन्तु मेरा अन्तिम लक्ष्य तो परमानन्द की प्राप्ति है। क्या प्रभु-भक्ति द्वारा इसकी भी मुझे प्राप्ति होगी या नहीं? वेद, भक्त के इस संदेह को भी दूर करता है। हे प्रिय भक्त! तू इस सन्देह को भी अपने हृदय-पटल से दूर कर दे, क्योंकि तेरे आराध्यदेव परमेश्वर तो 'सुशेव' हैं वे सारे सुखों के भण्डार हैं तथा परम शान्ति और पूर्णानन्द के धाम हैं। फिर यह कैसे सम्भव हो सककता है कि उस शान्ति और आनन्द के निकेतन को प्राप्त कर लेने पर तू आनन्द से वंचित रह जाय। सच्चा ईश्वर उस परम कल्याणमय प्रभु की उपासना द्वारा उसमें तल्लीन हो जाता है और इतना तल्लीन हो जाता है कि अपने को भूलकर वेद के शब्दों में साधक स्वयं कह उठता है-

"**यदग्ने स्यामहं त्वं, वा घा स्या अहम्। स्युष्टेः सत्या इहाशिषः।।** -(ऋ0 8/ 44/ 23)

पदार्थः- अग्ने- हे प्रकाश स्वरूप! यत जब, अहं+त्वं+स्याम्= मैं तू हो जाऊँ, वा घा= या (निश्चयवाचक), त्वं+अहं+स्या:= तू मैं हो जाय, तो ते+ इह+ आशिषः = तेरे इस संसार के आशीर्वाद, सत्या+स्यु= सत्य, सफल हो जायें।

भावार्थः- हे प्राणधन, अब तो मैं आपकी भव भय हारिणी पावन-भक्ति द्वारा तुझ में इतनाा लवलीन हो गया हूँ, इतना तन्मय हो गया हूँ कि-"मैं तू बन गया और तू मैं हो गया।" अब मुझे पता लगा है कि अपने अनन्य भक्तों के प्रति तेरे कृपा कटाक्ष और आशीर्वाद कितने अटल, ध्रुव और सत्य हैं। क्योंकि हे प्रभु! अब तो तू हमारा है और हम तेरे हैं।' वेद की ऋचायें भी तो यही कह रही हैं-

'**त्वमस्माकं तव स्मसि**' -(ऋ0 8/ 92/ 32)

वेद, जहाँ भक्त के आराध्यदेव परमात्मा के सत्य, शिव और सुन्दर स्वरूप को यथार्थरूप में हमारे सम्मुख रखता है, वहाँ भक्त का स्वरूप और कर्त्तव्यों का भी बड़ा सुन्दर वर्णन करता है। वेद का कथन है कि जो भक्त प्रभु को प्राप्त करना चाहता है, सर्वप्रथम उसके हृदय में प्रभु भक्ति की तीव्र लगन (अभीप्सा) होनी चाहिए, उत्कट-अभिलाषा रूपी तीव्र-अभीप्सा होनी चाहिए। प्रभु प्रेम के प्रति उसे अपना सब कुछ अर्पण कर देना चाहिए।

-(शेष अगले अंक में)

पारिवारिक जीवन

लेखकः

गृहाश्रम में प्रवेश का अधिकार किसको है?

गृहा मा बिभीत मा वेपध्व मूर्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जे बिभ्रद् वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥ 41॥
येपा मध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे तेनो जानन्तु जानतः॥ 42॥
अपहूता इह गाव अपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमायवः शान्त्यै प्रपद्ये शिवँ शग्मँ शंयोः शंयोः॥ 43॥ -(यजु0 अ0 3)

हे गृहस्थो मत डरो, मत कांपो, मैं जब पराक्रम को धारण करनेवालों के निकट आया हूं, तो स्वयं पराक्रम को धारण करके उदार हृदय और गम्भीर मेधा से युक्त होकर हर्ष भरे मन के साथ तुम गृहस्थों के निकट आता हूँ। (इससे बोधन किया है, कि गृहाश्रम का अधिकार उसको है, जिसके शरीर में पराक्रम है, हृदय उदार है, और मेधा गम्भीर है, यदि ऐसा न होकर गृहाश्रम में प्रवेश करता है, तो पहिले गृहस्थों को उससे डरना चाहिए। उसका आना गृहाश्रम का महत्व बढ़ाएगा नहीं, घटाएगा, जबकि वह इस भार को उठाकर सिर को ऊँचा नहीं रख सकेगा॥ 41॥

प्रदेश में जाकर पुरुष जिनको स्मरण करता है, जिनमें बड़ी भारी उदारता है, हम उन गृहस्थों को अपने निकट बुलाते हैं, वे हम पहचानते हुओं को पहचानें (गृहाश्रम में प्रवेश करने वाला उन गृहस्थों से सम्बन्ध जोड़े, जो ऐसे सद्गुणी और विशाल हृदय हों, कि प्रदेश में जाकर उनको मिलने की उत्कण्ठा बढ़े, स्वयं ऐसे गुणियों का पहचानने वाला हो, उनकी कदर करे, और ऐसे रहन सहन से रहे, कि वे भी इसकी कदर करें॥ 42॥

यहां हमने गौओं का स्वागत किया है, भेड़ और बकरियों का स्वागत किया है, और अन्न के सार का स्वागत किया है, वह सदा हमारे घरों में बना रहे। (हे गृहस्थो!) मैं क्षेम (रक्षा= सलामती) के लिए शांति के लिए तुम्हारी शरण लेता हूँ, कल्याण हो मुझ कल्याण चाहने वाले को, आनन्द हो, मुझ आनन्द चाहने वाले को॥ 43॥

ह्र्जे बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्॥ -(अथर्ववेद 7। 62। 1)

पराक्रम को धारण कर, ऐश्वर्य और भलाई का प्रेमी बन, उत्तम मेधा और उदार मन से युक्त हुआ, आदर मान करता हुआ मैं कभी प्रतिकूल न होने वाली मित्र के योग्य दृष्टि से गृहस्थों में प्रविष्ट होता हूँ। हे गृहस्थो मेरे साथ आनन्द मनाओ मुझसे मत डरो।

गृहाश्रम का अधिकारी वह है, जो पराक्रमी है, ऐश्वर्य और भलाई का प्रेमी है, उत्तम मेधा और उदार मन वाला है, जिसके मन में गृहस्थों के लिए आदर मान है, जो गृहस्थों को कभी प्रतिकूल दृष्टि से नहीं देखेगा, अपितु मित्र की दृष्टि से देखता हुआ सार्वजनिक कार्यों में भाग लेगा।

हमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः।। 2।।

ये गृहस्थ, जो सुखों के उत्पन्न करने वाले हैं, पराक्रम से और शक्ति से पूर्ण है, उत्तम आहार से और दूध से पूर्ण हैं, प्रत्येक उत्तम वस्तु से पूर्ण होकर स्थित हैं, वे हमें आते हुओं को स्वीकार करें॥

येषा मध्योति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जाननन्त्वा यतः।। 3।।

परदेश में जाकर पुरुष जिनको स्मरण करता है, जिनमें बहुत भारी उच्च भाव विद्यमान हैं, उन गृहस्थों को हम निकट बुलाते हैं, वे हमें आते हुओं को स्वीकार करें।

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन।। 4।।

मैंने बड़े धनवान्, स्वादु वस्तुओं से आनन्द मनाते हुए आपस में एक दूसरे के साथी गृहस्थों को बुलाया है, तुम जो भूख और प्यास का अभाव साधन करने वाले हो, हे गृहस्थो हमसे मत डरो॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।। 5।।

यहां (गृहाश्रम में) हमने गौओं का स्वागत किया है, भेड़ और बकरियों का स्वागत किया है, अन्न के सार का स्वागत किया है, यह सब सदा हमारे घरों में हो।

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदः।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मंद् बिभीतन।। 6।।

हे गृहस्थो! तु जो मीठी और सच्ची वाणियों वाले, सौभाग्य वाले, अन्न जलों के मालिक, हंसी से आनन्द मनाते हुए, भूख और प्यास का अभाव साधन करने वाले हो, हम से मत डरो।

इहैव स्त मानुगात विश्वा रूपाणि पुष्यत।
ऐष्यामि भद्रेण सह भूयांसो भवता मया।। 7।।

तुम यहां ही हो (मुझ से पहले गृहाश्रम में हो अतएव मेरे पूज्य हो) मत अनुगामी बनो (मेरे

पूज्यो! सदा स्वतन्त्र बने रहो) सारे रूपों (महिमाओं उन्नति के मार्गों) को पुष्ट करो, मैं भद्र (भला करने वाले गुण कर्म और वस्तुओं) के साथ तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट होने लगा हूं, (परमात्मा करे, कि) तुम मेरे द्वारा समृद्धि शाली बनो।

इन मन्त्रों में गृहाश्रम का अधिकार उसको दिया है, जो पराक्रमी, उदार हृदय, गम्भीर बुद्धि, ऐश्वर्य और भलाई का प्रेमी, अपने ऊपर पूरा भरोसा रखने वाला, मन से कभी दीन हीन न होने वाला, गृहाश्रमियों को आदर की दृष्टि से देखने वाला, और गृहाश्रम का भार उठाने योग्य हो, और वह ऐसे गृहस्थ श्रमियों के सम्बन्ध में रहे, जो इन गुणों में पूर्ण हैं, सार्वजनिक कार्यों के प्रेमी हैं। स्वयं भी उनके साथ मिलकर सार्वजनिक कार्यों में योग दे जिससे दुर्भिक्ष मरी आदि प्रजापीड़क राक्षसों से कोई भी दुःखित न हो। अपने घर को दूध देने वाले पशुओं से और उत्तम अन्न से भरपूर रक्खे, उन गृहस्थों में रहे, जो प्रसन्न वदन हंसते खेलते जीते हैं, जिन के चेहरों पर सदा कान्ति बरसती रहती है, और स्वयं भी सदा प्रसन्नवदन हंसता खेलता गृहाश्रम का उपभोग करे। ❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341

दान हेतु- श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

"गीता सुगीता कीजिये"

रचयिताः शान्ति नागर, आगरा (उ० प्र०)

है ज्ञान कर्म उपासना का संग्रह सुभग पढ़ लीजिये,
उपदेश पर कर आचरण, गीता सुगीता कीजिये।
यह देह नश्वर किन्तु देही तोअनश्वर अमर है,
जल–अनल–वायु–शस्त्र का होता न कोई असर है।
ज्यों देह बदले वस्त्र, देही बदलता है शरीर को,
हो पाप पुण्यों से प्रभावित भोगता हर पीर को।
जो चाहते आनन्द तो नित कर्म–शुभ–शुभ कीजिये,
गीता सुगीता कीजिये॥

है कर्म ही आवागमन का हेतु यह जानें सखे,
निष्काम कर्म किया करें, गीता कथन मानें सखे।
है एक अक्षर ब्रह्म जो उस ओम का सुमिरन करें,
अभ्यास से वैराग्य से हम वश में अपना मन करें।
मन अति प्रमाथी और चंचल मन को वश में कीजिये।
गीता सुगीता कीजिये॥

है न कोई शत्रु अपना और न कोई मित्र है,
हम स्वयं ही मित्र अपने, हम स्वयं ही शत्रु हैं।
क्रोध कारण नाश का है, क्रोध को त्यागें सदा,
दु:ख–सुख में मान–अपमान में समभाव हम धारें सदा।
हर शुभ–अशुभ से विरक्त हों, प्रज्ञा प्रतिष्ठित कीजिये।
गीता सुगीता कीजिये॥

फल की न कोई कामना विधिवत् किया जो यज्ञ है,
सात्विक कहा श्रीकृष्ण ने, जो न मानता सो अज्ञ है।
फल कामना और दम्भवश जिसको किया वह राजसी,
बिन दान के, श्रद्धा रहित, विधिहीन है वह तामसी।
है यज्ञ ही आधार सृष्टि का सुनिश्चित कीजिये।
गीता सुगीता कीजिये॥

अधिकारी पुलिस कर्मी और कार्यकर्ता पहुंचे। उन्होंने अपनी यात्रा भी ट्रेन के साधारण यात्री के रूप में की। जब ट्रेन रेलवे स्टेशन पर पहुंची तब पुलिस फोर्स ने शास्त्री जी की सुरक्षा को देखते हुये यात्रियों को धक्का देकर पंक्तिबद्ध होकर निकालना शुरु किया। तब शास्त्री जी भी धक्के खाकर उसी लाइन में लग गये जब स्थानीय पदाधिकारी ने अधिकारियों को संकेत दिया कि शास्त्री जी लाइन में लगे हैं। तब सभी सुरक्षाधिकारियों में हड़कम्प मच गया और वे दौड़कर शास्त्री जी के पास स्वागत करने पहुंचे और उनसे खेद प्रकट करते हुये क्षमा याचना करने लगे। शास्त्री जी ने मुस्करा कर कहा कि खेद प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं राजा नहीं हूँ जनता का सेवक हूँ। जब जनता इस तरह से अनुशासन में लगाई जा रही हो तो उसी अनुशासन का पालन हमें भी करना चाहिये। शास्त्री जी की सरलता और सादगी का प्रभाव विभागीय अधिकारियों और कार्यकर्ताओं पर अत्यधिक पड़ा सबने शास्त्री जी के इस आदर्श पर चलने का मानसिक रूप से संकल्प लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि माननीय शास्त्री जी ने सामान्य कार्यकर्ता से लेकर सर्वोच्च पद पर पहुंचने तक अपने व्यक्तित्व के उच्च आदर्शों को कभी लोप नहीं होने दिया। सामान्य पुरुषों में और लोकोत्तर महापुरुषों में यही मौलिक अन्तर होता है। महापुरुष कभी भी क्षुद्र भावनाओं को अपने जीवन में स्थान नहीं देते हैं। भौतिक चकाचौंध उन्हें अपनी ओर कभी भी आकर्षित नहीं कर सकती है।

प्रधानमंत्री बनने के बाद में भी शास्त्री जी अपने महान आदर्शों से तिलमात्र भी विचलित नहीं हुये। उनके जीवन की एक घटना उनके पुत्र ने स्वयं अपने मुख से हमें बतायी वह इस प्रकार है। जब शास्त्री जी प्रधानमंत्री बन गये तो उनका पूरा परिवार प्रधानमंत्री आवास में ले जाया गया। सारे सामान को व्यवस्थित करना था उनके पुत्र कहते हैं कि हमारे ऊपर बाबूजी के कमरे को व्यवस्थित करने का दायित्व आया तब इनकी उम्र 12 वर्ष की रही होगी। इन्होंने सारे कमरे को व्यवस्थित कर दिया दूसरे दिन अपने पूज्य पिताजी के पास मात्र इसलिये गये कि पिताजी हमारे कार्य की प्रशंसा करें। इन्होंने कहा कि पिताजी कमरा आपने देख लिया मैंने ठीक से व्यवस्थित किया है। पिताजी ने हमारी प्रशंसा की कि तूने कमरा तो अच्छी तरह व्यवस्थित कर दिया ये तो बहुत अच्छा है। पर उसमें हमारा एक कुर्ता गायब है वह कहां गया। मैंने कहा पिताजी वह कुर्त्ता तो कुछ पीछे की ओर से फट गया था मैंने अम्मा को दे दिया है। वह उसमें से काटकर रूमाल बना देंगी। शास्त्री जी ने तत्काल कहा कि तुम अपनी मां को बुलाओ जब वे आयीं तो शास्त्री जी ने उनसे कहा कि बच्चे ने जो कुर्त्ता आपको दिया था वह कुर्त्ता आपने काट तो नहीं डाला। वे बोलीं नहीं काटा नहीं है ऐसा ही रखा है उसमें से मुंह पोंछने के लिये रूमाल बन जायेंगे। शास्त्री जी बोले नहीं वह कुर्त्ता अभी हमारे पास ले आओ। वे बोलीं कुर्त्ता पीछे से फटा है उसका आप क्या करेंगे। शास्त्री जी बोले जहां से फट गया है उस जगह को सिल दो। सर्दियों आ रही हैं मैं कुर्त्ते के ऊपर कोट पहना करूंगा नीचे कौन देख रहा है कुर्त्ता कैसा है। देवी जी हमारे देश में गरीबी बहुत है अतः हमें अपने देश की जनता के अनुसार ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। यह सुनकर उनकी पत्नि मौन होकर कुर्त्ता सिलकर ले आयीं। धन्य हैं ऐसे महान व्यक्तित्व काश आज के नेता और जनता भी शास्त्री जी इन महान आदर्शों को अपनाने लगे तो निश्चित रूप से सारा देश स्वर्ग बन जाय और पूर्व की भांति संसार का गौरव बन जाय। पर दुर्भाग्य है आज हमने इन महान विभूतियों को उनके समाधि स्थल तक सीमित कर दिया। राष्ट्रिय पर्वों पर हम केवेल शमशन स्थलों में बनी उनकी समाधियों पर जाकर चारपुष्प चढ़ाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। शेष पूरे वर्ष अपने अधिकारों का दुरुपयोग देश को बर्बाद करने के लिये करते हैं। आकण्ठ भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि में डूबकर उन महान तपस्वियों की तपस्या की हत्या करते हैं।

इसी कृतघ्नता के कारण आज सारा देश अशान्त दिखाई दे रहा है। चारों ओर अविश्वास का ऐसा वातावरण बन गया है कि कोई कहीं भी अपने आपको सुरक्षित नहीं देख रहा है। साधनों का न्यायपूर्ण विभाजन स्वार्थपरता के कारण न होने से अभावग्रस्त समूह विद्रोह करके चोरी, डकैती, हत्या, लूटपाट आदि करने पर आमादा है और जिनमें यह करने का दुसाहस नहीं है। वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। ऐसी भयावह स्थिति से उभरने का एकमात्र उपाय यही है कि हम अपने माननीय पूर्व प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री जैसे उदारमना व्यक्तियों का आदर्श नई पीढ़ी के सामने रखें जिससे अधिकार की लड़ाई समाप्त हो और कर्त्तव्य का स्वर्णिम युग प्रारम्भ होकर देश पुनः जगत् गुरू के पद पर आसीन होकर विश्व शान्ति का आधार बने। ❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	मील का पत्थर	20.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	भ्रांति दर्शन	20.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शंकर सर्वस्व	120.00	शान्ता	20.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	संध्या रहस्य	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	गीता तत्व दर्शन	20.00	मानव तू मानव बन	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
वैराग्य दिवाकर	50.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	गायत्री गौरव	5.00
नित्य कर्म विधि	45.00	आर्यों की दिनचर्या	20.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
विदुर नीति	40.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	जीजा साले की बातें	5.00
चाणक्य नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	15.00	विषपान और अमृत दान	5.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	महिला गीतांजलि	15.00	पंचाग के गुलाम	5.00
दो मित्रों की बातें	35.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियां (प्रेस में)	
वेद प्रभा	30.00	बाल मनुस्मृति	12.00	ऋषि गाथा	4.00
शान्ति कथा	30.00	ओंकार उपासना	12.00	सर्प विष उपचार	4.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	पुराणों के कृष्ण	12.00	चूहे की कहानी	4.00
यज्ञमय जीवन	30.00	दादी पोती की बातें	10.00	उपासना के लाभ	4.00
दो बहिनों की बातें	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00	भगवान के एजेन्ट (प्रेस में)	
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	नमस्ते ही क्यों	10.00	दयानन्द की दया	3.00
चार मित्रों की बातें	20.00	आदर्श पत्नी	10.00	शंकराचार्य और मूर्ति पूजा	3.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	क्या भूत होते हैं (प्रेस में)		शांति पथ	2.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2020 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग (आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास, मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

मुद्रक स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600